मनोयात्रा

(मन की मीमांसा)

सर्वजीवहितावह ग्रंथमाला - ७१

संस्थापकः अ.मु.प.पू. श्री नारायणभाई गी. ठक्कर

श्री स्वामिनारायण डिवाइन मिशन

अहमदाबाद - १३

श्री स्वामिनारायण डिवाइन मिशन का प्रतीक

प्रतीक में श्री स्वामिनारायण भगवान के चरण कमल में सामुद्रिक शास्त्र में वर्णन किये गये भगवत्स्वरूप के सोलह विलक्षण चिन्ह हैः

*दाहिने चरण कमल में नौ चिन्हः

स्वस्तिक मांगल्यमय भगवत्स्वरूप को सूचित करता है।

अष्टकोण उत्तर-दक्षिण-पूरब-पश्चिम-अग्नि-ईशान-नैऋत्य-वायव्य आठों दिशा में भगवत्-करूणा बह रही है, इसका प्रतीक है।

ऊर्ध्वरेखा भगवत्कृपा से जीवों का अविरत ऊध्वीकरण दर्शित करता है।

अंकुश सर्व को अंकुश में रखने, सर्व के कारण रूप ऐश्वर्य का प्रतीक है तथा अंतःशत्रु को बस में रखना सूचित करता है।

ध्वज ध्वज अथवा केतु सत्यस्वरूप भगवान की विजय पताका है ।

वज्र भगवत्स्वरूप का वज्र तुल्य शक्तिशाली बल जीवों के दोषों को नष्ट कर काल-कर्म-माया के भय से मुक्त करता है, यह निर्देश देता है।

पद्म जलकमलवत् निर्लेप करने वाले भगवत्स्वरूप की करूणामय मृदुता को सूचित करता है।

जांबुफल भगवत्स्वरूप में जो सम्मिलित है उनको प्राप्त दिव्य सुखरूप रस का प्रतीक है।

जव अग्नि में जव, तल आदि अनाज़ की आहुति देकर अहिंसामय यज्ञ करने वाले एवं भगवत्स्वरूप में सम्मिलित है उनके धन-धान्य एवं योगक्षेम का भगवान स्वयं वहन करते है, यह सूचित करता है।

***बाये चरण कमल में सात चिन्हः**

मीन विपरित प्रवाह में बहकर उद्‌भव स्थान तक पहुँचती मीन की सदृश ऐश्वर्य-सुख के उद्‌भव स्थान भगवत्स्वरूप की प्राप्ति सूचित करता है।

त्रिकोण जीव को मनोव्यथा, व्याधि, आपत्ति से मुक्त करवा कर ईश्वर, माया, ब्रह्म की त्रिपुटी से पर परब्रह्म-स्वरूप में स्थित करने का निर्देशक है।

धनुष अधर्म से निज आश्रित का रक्षण करने का प्रतीक है।

गोपद भगवत्प्रिय गोवंश और भगवत्प्रिय सत्पुरूषों के परोपकारी लक्षण को सूचित करता है।

व्योम भगवत्स्वरूप के आकाशवत् निर्लेप भाव की सर्वत्र व्यापकता सूचित करता है।

अर्धचन्द्र भगवत्स्वरूप के घ्यान के द्वारा चँद्रकला की सदृश वृद्धि होकर पूर्णता को प्राप्त करता है, यह दर्शित करता है।

कलश भगवत्स्वरूप की सर्वोपरिता एवं परिपूर्णता का प्रतीक है।

प्रतीक में स्थित भगवत्स्वरूप व चिन्ह के रहस्य को दृष्टि समक्ष रखकर, सर्व जीव का हित हो ऐसी निःस्वार्थ ज्ञान-ध्यान-सेवा प्रवृत्ति सदैव करते-करवाते रहने के मिशन के पुरूषार्थ में भगवत्कृपा बरसती रहे, ऐसी श्री हरि के चरण कमल में प्रार्थना।

।। श्री स्वामिनारायणो विजयतेतराम् ।।

मनोयात्रा

(मन की मीमांसा)

सर्वजीवहितावह ग्रंथमाला

७१

: संस्थापक :

• अ. मु. प. पू. श्री नारायणभाई गी. ठक्कर •

श्री स्वामिनारायण डिवाइन मिशन

अहमदाबाद-१३

श्री स्वामिनारायण डिवाइन मिशन

सर्वजीवहितावह ग्रंथमाला

❄ **प्रकाशन समिति** ❄

: प्रेरक - मार्गदर्शक :

❄ **अ. मु. प. पू. श्री नारायणभाई गी. ठक्कर** ❄

©श्री स्वामिनारायण डिवाइन मिशन, अहमदाबाद

(रजि. नं. ई/४५४६/अहमदाबाद : १९८१)

इन्कमटेक्स एक्षेम्पशन u/s 80(G)5

प्रथम संस्करण

प्रतियाँ : १०००

२००७, १६, फरवरी

सं. २०६३, महा वद चौदश

सेवा मूल्य : रु.१५/-

प्रकाशक

श्री स्वामिनारायण डिवाइन मिशन

८, सर्वमंगल सोसायटी, पूज्यश्री नारायणभाई मार्ग

नारणपूरा, अहमदाबाद - ३८००१३ ✆ : २७६८२१२०

मुद्रक

भगवती ओफसेट

बारडोलपूरा, अहमदाबाद

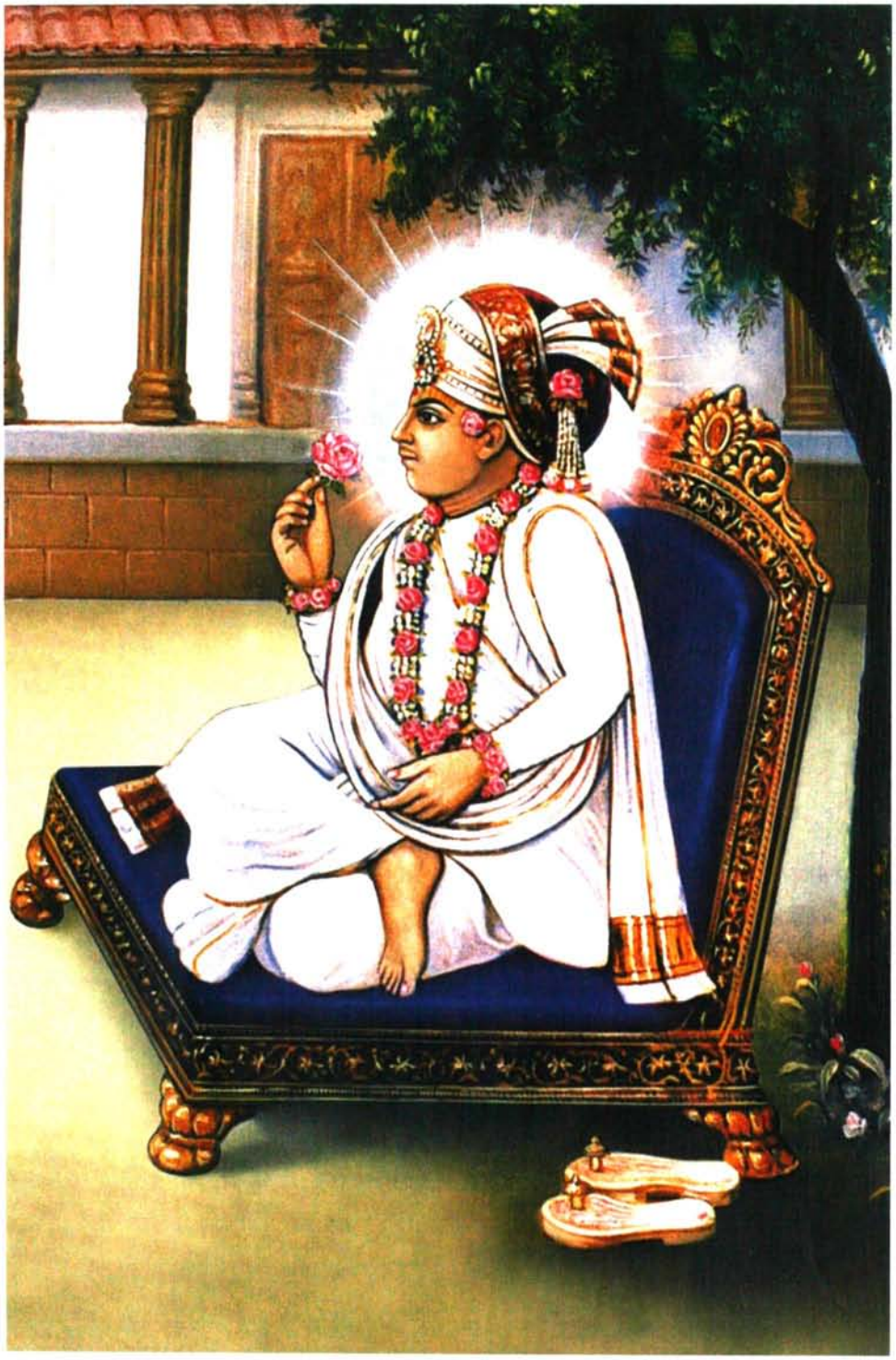

सर्वोपरि उपास्य मूर्ति

पूर्ण पुरुषोत्तम श्री स्वामिनारायण भगवान

अर्पण

अनंतकोटि मुक्त के
स्वामी एवं सदा साकार
दिव्य मूर्ति ऐसे परम कृपालु
श्री स्वामिनारायण भगवान के
गूढ़ रहस्य ज्ञान को समझाने वाले,
महाप्रभु के सुखनिधि स्वरूप की सर्वोपरिता
सर्वत्र प्रवर्तित करने वाले तथा अनादिमुक्त की
सर्वोत्तम स्थिति का अनुभव करवाने वाले
-इस प्रकार समग्र सत्संग और मानव कुल
पर महद् उपकार करने वाले परम कृपालु
अनादि महामुक्तराज़
प. पू. श्री अबजीबापाश्री के
चरणकमलों में सादर समर्पित

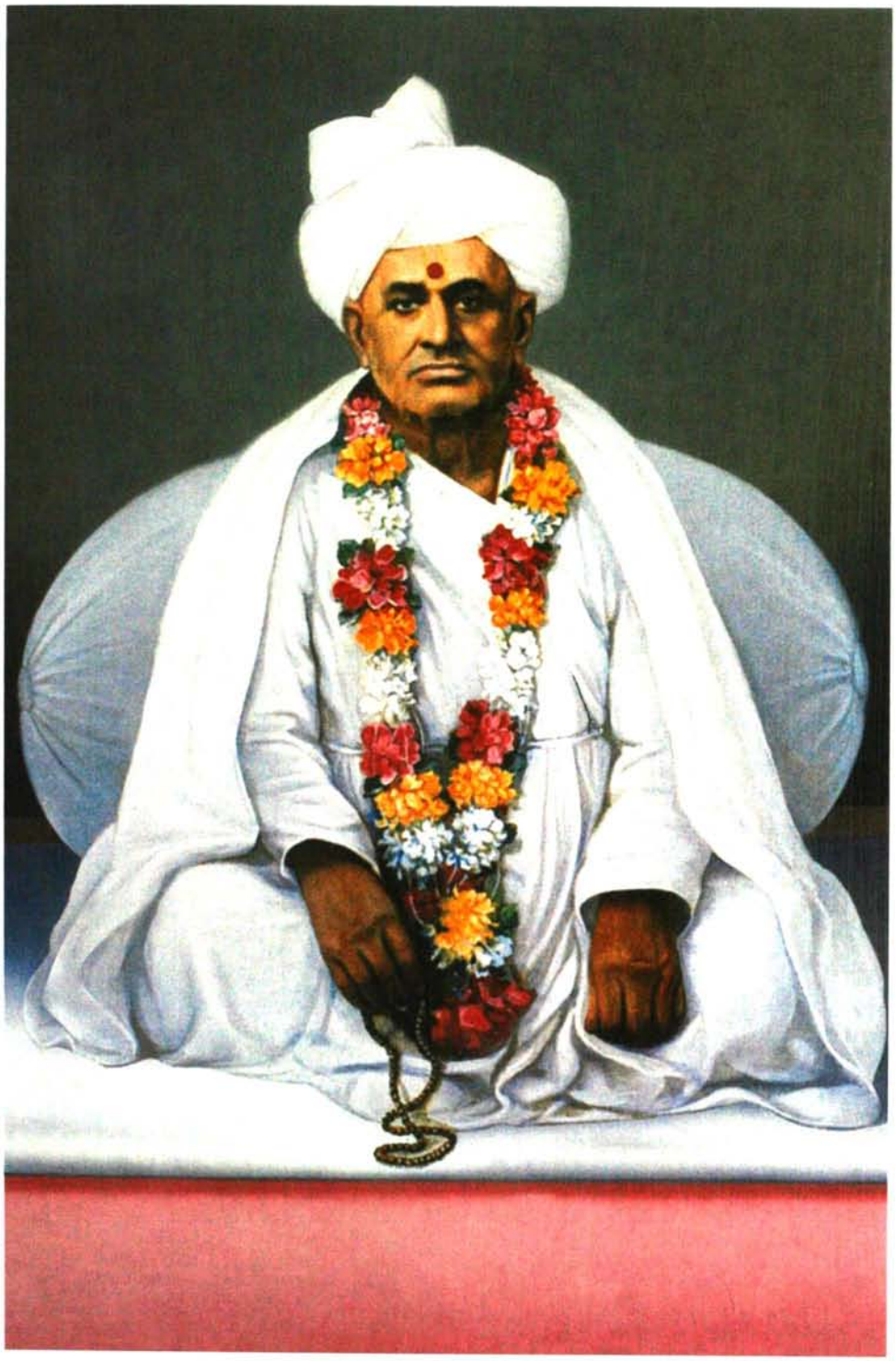

रहस्यज्ञान प्रदाता

अनादि महामुक्तराज श्री अबजीबापा

अर्घ्य

श्रीजीमहाराज़ तथा बापाश्री के
सर्वोपरि तत्वज्ञान को वैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत
कर आध्यात्मिक, सामाजिक तथा शिक्षा क्षेत्र में
अद्वितिय योगदान देने वाले, धर्मशुद्धि, संचालनशुद्धि एवं
चारित्र्यशुद्धि प्रखर हिमायती तथा चैतन्य का ऊर्ध्वीकरण
करने रूपी ब्रह्मयज्ञ की आहलेक जगाने सर्वजीवहितावह
संस्था **श्री स्वामिनारायण डिवाइन मिशन** की
स्थापना करने वाले करुणा मूर्ति सद्गुरुवर्य
अनादि मुक्तराज़ पूज्य श्री नारायणभाई के
चरण कमल में शतकोटि वंदन

●

संस्थापक

अनादि मुक्तराज

पूज्यश्री नारायणभाई गीगाभाई ठक्कर

संपादकीय विशेष

श्री स्वामिनारायण डिवाइन मिशन ऐसी ग्रंथ श्रेणी प्रकाशित-संपादित करने को उत्सुक है, जो समग्र मानव जाति के लिये कल्याणकारी हो एवं जिसके पठन से भारतीय संस्कृति का उच्चत्तम उद्देश्य सार्थक होता हो।

वर्तमान बुद्धियुग में उच्च शिक्षा का विस्तार प्रतिदिन बढ़ रहा है। उच्च शिक्षा मूल उद्देश्य जीवन में उच्चतर मूल्य प्रस्थापित करना है, जीवन का सर्वोच्च मूल्य परमात्मा के परम सुख की अनुभूति में स्थित है। इन उद्देश्यों की ओर पथदर्शित करने में यह ग्रंथ श्रेणी सहायक होगी ऐसी अपेक्षा है।

शिक्षा, विज्ञान एवं यंत्रविद्या के अविरत बढ़ते हुए व्याप को हमें इस प्रकार ढ़ालना है कि केवल भौतिक सुख की प्राप्ति का साधन न बनकर, मानव के आंतरिक विकास में उच्चत्तम सहायक हो; साथ ही हमें ऐसी समझ का प्रसार करना है कि उत्क्रांति का अंतिम लक्ष्य उत्तरोत्तर विकसित होकर परमात्मा के दिव्य सुख में सम्मिलित होने में है।

दिव्यानंद की प्राप्ति के लिये अविरत विकसित होने की प्राकृतिक अंतःप्रेरणा मानव को ईश्वर द्वारा दिया गया अनमोल उपहार है। यह ऐसा सूचित करता है कि हम सब साथ मिलकर ऐसी सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक परिस्थिति का निर्माण करें, जिससे जीवन के उर्ध्वीकरण की प्रक्रिया निर्बाध रूप से पूर्णतः पल्लवित हो। इस कार्य को गति प्राप्त हो ऐसे प्रेरणादायी साहित्य का सर्जन करना आवश्यक है।

मानव जाति के आध्यात्मिक एवं सामाजिक श्रेय के हेतु श्री स्वामिनारायण भगवान ने, जीवन को अविरत ऊर्ध्व बनाकर,

आत्यंतिक दिव्य सुख की प्राप्ति हो ऐसा समन्वयकारी ज्ञानमार्ग प्रस्थपित किया है; उनकी श्रीमुखवाणी वचनामृत तथा शिक्षापत्री में इस तत्त्व ज्ञान की गहनता अनन्य है एवं सविस्तार सरल भाषा में प्रस्तुत है। इसके अतिरिक्त स्वयं के ब्रह्मनिष्ठ संत एवं गृहस्थ मुक्तपुरूष द्वारा सर्वहितावह साहित्य भी विपुल मात्रा में सज्जित करवाया है।

उपर्युक्त ग्रंथो में सर्वग्राह्य भारतीय संस्कृति तथा जीवन जीने की वास्तविक दिशा दर्शित की गई है। अतः इस ग्रंथ श्रेणी में सर्वजन पूरब के हो या पश्चिम के, सभी को दिव्यता की ओर अग्रसर होने में पथदर्शक हो, ऐसे आदर्श तथा ज्ञान को अर्वाचीन ज्ञान के प्रकाश में प्रस्तुत करने का उत्तम प्रयत्न किया जायेगा। हमें विश्वास है कि इससे मानव जीवन में संवादिता आयेगी एवं आधुनिक जीवन की विषमता क्रमशः कम होते हुए दूर हो जायेगी।

भारत या विश्व के अन्य साहित्य जिसमें दर्शित विचार हमारे उद्देश्य के साथ सुसंगत होंगे, उन्हे भी इस ग्रंथ श्रेणी में सम्मिलित किया जायेगा।

हमारी ईच्छा यह है कि इस ग्रंथ श्रेणी के पुस्तक केवल गुजराती भाषा में ही नहीं, अपितु हिंदी, अंग्रेजी आदि भाषा में भी प्रकाशित करें, जिससे अन्य भाषी पाठक भी इस ग्रंथ श्रेणी से लाभांवित हो।

मिशन की इस प्रवृत्ति की सफलता प्राप्ति में सभी का सहकार प्राप्त हो एवं मिशन के सर्व कार्य में सदैव प्रभु कृपा संलग्न हो, यही अभ्यर्थना।

दासानुदास
नारायणभाई गी. ठक्कर
स्थापक प्रमुख
श्री स्वामिनारायण डिवाइन मिशन

सं. २०४२, श्रीहरि जयंती
अप्रैल १८, १९८६
अहमदाबाद

निवेदन

विश्व की अठारहवाँ अचरज (!) जैसे आश्चर्य की बात यह है कि मन को समझने के लिये मन का ही सहारा लेना पड़ता है भौतिक या आद्यात्मिक किसी भी प्रकार की प्राप्ति के लिये मन के उपकरण यथायोग्य उपयोग अनिवार्य है। शर्त यह है कि मन पर आपका नियंत्रण होना चाहिये, न कि मन का आप पर।

एक महात्मा के पास एक बार एक मुमुक्षु युवान ज्ञान प्राप्ति के लिये आया। महात्मा ने उससे कहा : 'सर्व प्रथम तुम मेरा एक कार्य करो तत्पश्चात ही मैं तुम्हें शिष्य बनाऊँगा। यह एक बक्सा है,उसे दो कोस दूर रहते मेरे मित्र को दे आओ।'युवान तुरंत ही बक्सा लेकर चल पड़ा। एक कोस चल कर एक पेड़ के नीचे आराम करने बैठा। आराम करते हुए सोचने लगा, बक्से में क्या है देख लूँ? परंतु उसकी अंतरात्मा ने उसे रोका : नहीं यह किसी की अमानत है, बक्सा नहीं खोल सकता, ज्यों-ज्यों समय बीतता गया,त्यों-त्यों उसकी बक्सा खोलने की ईच्छा तीव्र होती गई। अंततः उसने बक्सा खोल ही दिया। बक्सा खोलते ही उसमें से एक चुहिया कुद कर जंगल में भाग गई। मुमुक्षु डर गया अब मैं महात्मा को क्या जवाब दूँगा?निराश वदन से संत के पास लौटा। महात्मा ने उससे कहा : 'बक्से में बंद चुहिया तुम्हारे लिये एक अवसर के समान थी,जिसे तुमने गवाँ दिया,तुम्हारी इस निष्पलता का

कारण है **तुम्हारा मन**। तुम में आत्मसंयम की कमी हैं। अतएव तुम संसार में लौट जाओ तथा संसार के संघर्ष द्वारा संयम रखना सिखो। अपने मन का मालिक बनना पहले सिखो, इसके बिना आध्यात्मिक उपलब्धी संभव नहीं है।'

पूज्यपाद गुरुवर्य अ. मु. प. पू.श्री नारायणभाई सदैव कहते कि 'आप के मन को पाताल सदृश महान बनाये सुनी हुई हरेक बात को पचाना सिखीये, जाने हुए रहस्यों को पाताल में दबा दीजिये। यह आत्मसंयम ही आपको आपके मन का मालिक बनायेगा। जीवन के अनेक रंगो के निरीक्षण के पश्चात आज भी यह बात व्यक्ति के लिये इतनी ही संगत लगती है।

मन की मीमांसा को दर्शित करता यह लघु ग्रंथ 'मनोयात्रा' 'श्रीस्वामिनारायण डिवाइन मिशन' द्वारा गुरुवर्य अ. मु. प. पू. श्रीनारायणभाई के प्राकट्य दिन पर प्रकाशित होता है, यह उनकी ही प्रसन्नता का परिणाम है। हमें आशा है कि मुमुक्षु को आत्मसंयम से लेकर प्रतिलोम ध्यान तक के सोपान को हाँसिल करने में यह ग्रंथ सहायक होगा।

सर्वोपरि भगवान श्री स्वामिनारायण, परम कृपालु बापाश्री महान सद्‌गुरु श्री तथा वात्सल्य मूर्ति गुरुवर्य अ. मु. प. पू. श्री नारायणभाई की कृपा वर्षा इस प्रकाशन कार्य में उपयोगी सभी पर बरसती रहे ऐसी अभ्यर्थना।

सं. २०६३, महा वद चौदश
ई. स. २००७, १६ फरवरी

प्रकाशन समिति
श्री स्वामिनारायण डिवाइन मिशन
अमदावाद

अनुक्रमणिका

क्रम	विषय	पृष्ठ
१	मुकाम पहेला : जागरुकता	१
२	मुकाम द्वितीय : मन क्या है?	५
३	मुकाम तृतीय : मन की उत्पत्ति	९
४	मुकाम चतुर्थ : मन का आधार	१५
५	मुकाम पाँचवां : मन के प्रकार	१९
६	मुकाम छठ्ठा : मन का स्वभाव	२५
७	मुकाम सातवाँ : मन की विविध अवस्थाएँ	२८
८	मुकाम आठवाँ : वैश्विक चेतना और मन	३१
९	मुकाम नौवाँ : मन की अचिंत्य शक्ति	३५
१०	मुकाम दसवाँ : मन की मर्यादाएँ	४२
११	मुकाम ग्याऱहवाँ : मन एवं विचार	४६
१२	मुकाम बारहवाँ : मन का निग्रह	५०
१३	मुकाम तेरहवाँ : मन एवं मस्तिष्क	५६
१४	मुकाम चौदहवाँ : मन एवं स्वास्थ्य	६१
१५	मुकाम पंद्रहवाँ : चिंता छोडो स्वस्थ रहो	६७
१६	मुकाम सोलहवाँ : मन का उर्ध्वीकरण	७२
१७	मुकाम सत्तरहवाँ : ध्यान	७७
१८	मुकाम अठराहवाँ : समाधि	८४

मनोयात्रा

(मन की मीमांसा)

मुकाम पहला
जागरूकता (Awareness)

गोधूली के समय एक बार एक हरिभक्त ने परम पूज्य गुरुदेव अ. मु. पूज्य श्री नारायणभाई से पूछा था: 'गुरुजी, धर्मसाधना की प्रथम शर्त क्या हो सकती है?' गुरुवर्य ने शांति से कहा: 'स्वस्थ शरीर.... शरीरम् खलु धर्मसाधनम्।'

'.....और शरीर को स्वस्थ रखने के लिये.....' हरिभक्त का प्रश्न पूर्ण होने से पूर्व ही उन्होंने कहा: 'शरीर स्वस्थ रखने के लिये स्वस्थ मन आवश्यक है। जैसा मन वैसा शरीर और जैसा शरीर वैसा मन। शरीर एवं मन दोनों एक सिक्के के दो पहलु है।' कुछ क्षण के विराम के पश्चात गुरुजी हँसते हुए बोले: 'अब आप पुछोगे कि मन स्वस्थ किस प्रकार रह सकता है? है ना?'

हरिभक्त ने स्मित करते हुए हाँ कहा। पश्चात कुछ गंभीर होते हुए वे बोले: 'यह ऐसा है कि इसके लिये मन को जानना जरुरी है। यह जानना जागने से ही संभव है। जागना अर्थात् होश में जीना। जिसे अंग्रेजी में To live with awareness कहते है। गीता में इसे साक्षी भाव कहा है। श्रीजीमहाराज़ जानकारी रूप दरवाजे की जो बात कहते है, वह इसी संदर्भ में है। इस प्रकार जागृत रहकर मन को दृष्टिकृत करना सीखें, उसे रुचि या अरुचि से बाँधे नहीं। मन में उठते संकल्प-विकल्प के साथ एक रूप हुए बिना तटस्थ

रूप से निरीक्षण करें। जो होता है इसमें मन जो कर्तृत्व का (मैं का अहंभाव)मनोभाव दर्शित करता है, उसे जागृत रूप से दृष्टिकृत करते रहे, तो मन आपका मित्र बनकर आपके साधनामय जीवन में सहायक होगा।'

अति महत्वपूर्ण बात यह है कि अनुभव से यह सम्यक् रूप से समज सकते है कि शरीर सर्व प्रकार से मन के बस में है। बाह्य तकलीफ न हो अथवा कोई अकस्मात या आकस्मिक संयोग के कारण भयंकर छूत न लगे तब तक शरीर गँभीर रूप से बीमार नहीं होता है। कई बार ऐसा देखा गया है कि दृढ़ मनोबल वाले को बाहरी छूत भी असर नहीं करती है। निर्बल मन सर्व प्रकार की बीमारी लाता है। मन की निर्बलता ही महद् अंश से शरीर की प्रतिकारकता (Immunity)को भी समाप्त कर देती है।

मन की एक विशिष्ट आदत है प्रतिक्रिया (Reaction) करना। सुबह उठकर आप क्या करते है?आलस्य मरोडना या जम्हाई लेना। यह मन की एक स्वाभाविक प्रतिक्रिया ही है। जब आप किसी के साथ बात कर रहे हो और मक्खी आपके नाक पर बैठे तो आपका हाथ अपने आप ही मक्खी उडायेगा, यह भी मन की ही प्रतिक्रिया है। कभी कोई अनचाही व्यक्ति राह में मिल जाए और मीठी-मीठी बातें करने लगे तो, मन भूतकाल के खराब अनुभव के आधार पर ही प्रतिक्रिया में ही विचार करने लगेगा, 'यह तो एक लुच्चा आदमी है। उस वक्त भी उल्लु बना गया था! आज भी अवश्य ही कोई काम होगा, अतएव मीठी-मीठी बातें कर रहा है' । इस प्रकार मन भूतकाल के अनुभव के आधार पर

वर्तमान की प्रत्येक घटना की प्रतिक्रिया करता है।

इस प्रकार हमारा जीवन मन की प्रतिक्रिया से बना है। मन जब प्रतिक्रिया न करें उस समय जो दर्शन होता है वही सत्य है। मन की प्रतिक्रिया ही वस्तु को उसके वास्तविक रूप में हमें दृष्टिकृत नहीं करने देती। मन प्रतिक्रया के कारण किसी वस्तु, घटना या व्यक्ति के बीच पारदर्शक परदा कर देता है, फलस्वरूप हम किसी भी वस्तु, व्यक्ति या घटना को अपने पूर्वग्रह या अनुभव के आधार पर ही समझते है और दृष्टिकृत करते है। परिणाम स्वरूप सत्य से सदैव ही वंचित रहते है।

इक्ष्वांकु वंश में जानश्रुति नामक एक मुमुक्षु राजा हो गये। एक बार उसने उसके गुरु रैकेव से प्रश्न पूछा: 'प्रभु सब कुछ ईश्वर को अर्पण करने पश्चात भी कर्म के फल रूप पाप पुण्य क्यों लगते है?' उत्तर में गुरु ने पास पड़ा हुआ पत्थर राजा के सिर पर मारा। राजा ने क्रोधित होकर गुरु को पकड़ कर मारने का हुकम दिया, तब गुरु बोले: 'राजन्, अगर तुने तेरा सर्वस्व ईश्वर को समर्पित किया है, तो यह पत्थर का लगना भी ईश्वरेच्छा से हुआ है, ऐसा मानकर यह समझना चाहिये कि ईश्वर समर्पित इस देह को पत्थर लगे या भाला मारे, मुझे क्या? परंतु नहीं, तुम यह बात भुल गये और तुम्हारे मन ने प्रतिक्रिया कर क्रोध किया। राजन् तुम प्रतिक्रिया में जीते हो, अतएव तुम्हें सभी पाप और पुण्य लगते है। हरेक घटना की जिम्मेदारी संयोग की, भाग्य की या ईश्वर की हो तथापि उस जिम्मेदारी में प्रतिक्रिया कर उसमें हिस्सेदार बन जाते हो।'

गुरु रैकेव राजा जानश्रुति को अंततः उपदेश देते हुए कहते है: 'राजन् पाप-पुण्य, सुख-दुःख, सर्जन-प्रलय सब कुछ जिसकी सत्ता से होता है वह तेरे भीतर एवं सर्व जगत में अन्वय रूप से विद्यमान है। उसे पाने के लिये पाप- पुण्य, सुख-दुःख की गिनती नहीं करनी पड़ती, वह तो प्राप्य ही है। उसके आसपास उसकी ही सत्ता से घिरा हुआ मन, जिसे तुने अहंकार से तेरा माना है, वह तेरे और परमतत्व के बीच अभिनव प्रतिक्रिया द्वारा तुझे रोके रखता है। तु मन की प्रतिक्रिया से मुक्त होकर जीवन को दृष्टिकृत कर, ऐसा करते हुए हे राजा! तु संसार में रहते हुए भी प्रभु प्राप्ति कर सकेगा।

अगर हरेक इन्द्रियों की प्रत्येक क्रिया को जागरुक होकर निहारे तो मन की यह प्रतिक्रिया करने की आदत छूट जाती है। मनको शांति से विराम करने के लिये किसी आसन की आवश्यकता है; मन जब भी किसी पदार्थ या व्यक्ति में लीन होता है, तब कुछ समय के लिये उसे शांति प्राप्त होती है, परंतु दुन्यवी पदार्थ या व्यक्ति में मिलती यह शांति अति क्षणिक होती है। अतः अगर मन को सच्ची शाश्वत शांति प्रदान करनी हो तो उसे श्री हरि के चरणों में ही आसन दें। प्रभु की दिव्यमूर्ति में लीन होने से जो शांति, जो आनंद प्राप्त होगा, वह चिरकालीन एवं अलौकिक होगा।

मुकाम द्वितीय
मन क्या है?

गहन चिंतन करने से यह ज्ञात होता है कि मन का घनी भूत स्वरूप (Solidified form) यानि स्थूल शरीर, मन का क्रियात्मक शरीर यानि कर्म एवं मन का वायुमय शरीर स्वरूप यानि प्राण। स्वामी विवेकानंद भी इस बात का समर्थन करते हुए 'राजयोग' में लिखते है: 'शरीर तो मन की मात्र बाहरी सतह है। ये दोनों अलग-अलग वस्तु नहीं है,जिस प्रकार कालु मछली एवं उसकी सीप होती है, उसी प्रकार मन पर शरीर है, दोनों एक ही वस्तु के दो पहलु है .कालु मछली का भीतरी पदार्थ बाहर से जड़ तत्व को लेता है और सीप बनाता है, उसी प्रकार भीतर के सूक्ष्म बल जिसे मन कहते है, बाहर से स्थूल द्रव्यों को लेकर.उनमें से इस बाह्य शरीर रूप सीप तैयार करता है।

मन स्वयं के प्राणमय स्वरूप द्वारा हमारे स्थूल शरीर में वायु को गति देता है, फेफड़े को क्रियाशील रखता है, आँखों का खोलना-बंद करना करता है, अन्न को पचाता है, रक्त को गति प्रदान करता है, कोषों को नवजीवन देता है एवं ऐसे अनेक कार्य करता है। शरीर के पाचक रस, रक्त, शुक्र, पसीना, पित्त, कफ आदि मन के ही जलमय स्वरूप है। मन भयभीत होता है तब पसीना आता है और मन आनंद में हो तो शरीर में रस बनते है। मन वासना के आवेग में आये

तो शुक्र या रज की उत्पत्ति होती है। क्रोध के समय में मन कफ की वृध्दि करता है, तो उद्वेग के समय में पित्त की वृद्धि करता है। इस प्रकार मन के सभी व्यापार मन के आधीन है।

अगर आप जागरुकता पूर्वक दृष्टिगोचर करेंगे तो यह ज्ञात होगा कि हमारी प्रत्येक इंद्रिय तथा प्रत्येक संवेदन के पीछे मन विद्यमान है। भगवान श्री स्वामिनारायण निज अध्यात्मशास्त्र वचनामृत में कहते है: 'पंद्रह तत्व का (पंचमहाभुत, पंचज्ञानेन्द्रिय तथा कर्मेन्द्रिय) स्थूल शरीर है, परंतु जब उसमें नौ तत्व की (मन,बुद्धि, चित्त, अहंकार तथा पंचविषय शब्द, स्पर्श, रूप, रस, और गंध),सूक्ष्म देह सम्मिलित हो तब विषय का यथार्थ ज्ञान होता है, इसके बिना नहीं होता है .....स्थूल देह को श्रोत्र इंद्रिय है उसके द्वारा बात सुनता है, अगर मन अन्य स्थान की ओर हो तो वह बात समज में नहीं आती है इस प्रकार दसों इंद्रिय में मन वर्तित हो तो ही वे इंद्रियाँ निज विषय को ग्रहण करने में समर्थ हो, परंतु अगर मन न वर्तित हो तो कोई भी इंद्रिय निज विषय को ग्रहण करने में समर्थ नहीं होती है।' (साळंगपुर-१४ वाँ वचनामृत)

कई बार आँखे खुली होने के बावजुद हमें आँखो के सामने के दृश्य का अधिक ज्ञान नहीं होता है, क्योंकि उस समय हमारा मन किसी दूसरी कल्पना या विचार में मग्न रहता है। आँखों से देखने के लिये आँखो के गोलक में मन की सक्रियता अत्यंत आवश्यक है। हमारी आँखों के सामने जब कोई दृश्य, वस्तु या व्यक्ति आती है, तब नेत्रपटल (Retina) पर उसका प्रतिबिंब पड़ते ही ज्ञानतंतु द्वारा दिमाग

के दर्शन केन्द्र में उसके संवेदन पहुँचते है, वहाँ से वे संवेदन मन के पास भेजे जाते है। मन उन संवेदनों को निश्चयात्मिका वृत्ति रूप बुद्धि की समक्ष प्रस्तुत करता है। बुद्धि उसकी प्रतिक्रिया करती है। इस प्रतिक्रिया के साथ ही 'मैं' की भावना स्फुरित होती है। तत्पश्चात इस क्रिया एवं प्रतिक्रिया का संमिश्रण आत्मा की समक्ष प्रस्तुत होता है। आत्मा जब मिश्रण को दृश्य के रूप में दृष्टिकृत करती है, तब उसे हम दर्शनानुभूति कहते है। यह समग्र घटना क्षणो में रचित होती है और हम साक्षीभाव भूल कर मन के साथ एकरूपता अनुभव करते होने की वज़ह से मन की प्रतिक्रियात्मक वृत्ति से होते दर्शन को समझ नहीं सकते है।

अज्ञान वेष्टित आत्मा को धर्म शास्त्र में जीव के तौर पर पहचाना जाता है। मन एवं जीव दोनों परस्पर मित्र है।भगवान स्वामिनारायण ने इन दोनों की मित्रता की तुलना दूध एवं पानी की मित्रता से की है। दूध और पानी को मिश्रित कर गर्म किया जाए तो पतीली में पानी नीचे बैठकर दूधको जलने से बचाता है। उसी प्रकार अधिक गर्म होने से दूध उफान लाकर अग्नि को बुज़ा कर पानी को जलने से बचाता है।(ग.अं.६ठ्ठा वचनामृत) जो बात जीव को पसंद न हो उसका मन में कभी संकल्प भी नहीं होता है। इस प्रकार जीव और मन का एकात्मभाव भली भाँति सिद्ध करते हुए श्रीजीमहाराज़ (ग.म.२३वे) वचनामृत में कहते है: 'आज हमने मन के रूप का विचार किया परंतु मन जीव' से भिन्न दृष्टिकृत नहीं हुआ, मन तो जीव की ही कोई किरण है, परंतु जीव से भिन्न नहीं है।'

मन द्वारा आत्मा ही अभिव्यक्त होने के कारण श्रीजीमहाराज़ ने मन को जीव की कोई किरण कहा है, इसके द्वारा मन की जीव के साथ तादात्म्यता दिखाई है। अतएव उपनिषद कहते है कि 'मन एक महान देव है ऐसा समझ कर उसकी पूजा करें।' वृत्ति के बिना मन आत्मा के साथ एक रस हो जाता है।

श्वेताश्वतर उपनिषद में एक अति सुंदर श्लोक आता है। जिसमें कहा गया है: 'सुंदर पंख वाले पक्षी की जोड़ी एक वृक्ष की ड़ाल पर बैठी है, जिसमें एक पक्षी फल खा रहा है, जबकि दूसरा फल न खाते हुए, उसे देख रहा है।' अति सुंदर रूपक है। कौन है ये पक्षी?जो फल खा रहा है वह मन सहित अहंकार है यानि आप स्वयं हो, जो फल नहीं खा रहा है वह आपकी सहज आत्मस्थिति है। मन को जो इस प्रकार पहचानता है, वह सहज हो सकता है एवं वही परमात्मा को पा सकता है!!

मुकाम तृतीय
मन की उत्पत्ति

श्री योगवासिष्ठ महारामायण में (५/९१) भगवान श्री रामचंद्र महर्षि वसिष्ठ से एक अतिशय मार्मिक सवाल किया है। श्रीराम पूछते है: 'गुरुदेव, इस शरीर की उत्पत्ति का कारण क्या है? एवं प्रभु, कृपा कर यह भी बतायें कि शरीर की उत्पत्ति के कारण का कारण क्या है?' महामुनि वसिष्ठकहते है, 'राम, इस स्थूल शरीर का बीज यानि कि उत्पत्ति का मूलभूत कारण चित्त अर्थात् मन है। वत्स! तुम्हे संशय होगा कि चित्त से शरीर किस प्रकार उद्भवित् हो सकता है?परंतु ऐसा शक निरर्थक है, क्योंकि स्वप्नावस्था में चित्त से हमारे शरीर का उदय हम सभी अनुभव कर सकते है। हे राम! जिस प्रकार मटकी तथा गमला आदि मिट्टि का ही विशाल रूप है। उसी प्रकार यह दबदबा भरा जगत दृष्टिकृत होता है वह भी चित्त का ही विशाल रूप है। वत्स, अब इस चित्त की उत्पत्ति का कारण क्या है उसे सुनो, अनेक जन्मों के संचित कर्म के परिपाक रूप से अज्ञानमय दृढ़ वासना की सतह आत्मा से चिपकती है, जिसे कारण शरीर कहा जाता है। यह कारण शरीर वासना मय है, अज्ञान रूप है,अविद्यात्मक है, अतः उसे ही माया अथवा प्रकृति कहते है। जब जीव देह धारण करता है, तब वासना एवं प्राण की गति उभय प्रवृत होने से उसमें से चित्त जन्मता है! हे राम! एक प्राण की गति

और दूसरी दृढ़ वासना ये दोंनो चित्त की उत्पत्ति के कारण है। उनमें से एक के क्षीण होने से दोनों क्षीण हो जाते है। सिर्फ प्राण की गति या सिर्फ वासना चित्त को जन्म दे नहीं सकती। जिस प्रकार तिल में तेल है, उसी प्रकार प्राण की गति वासना में एवं वासना प्राण की गति में स्थित है। जिस प्रकार बीज से अंकुर निकलता है और अंकुर से बीज होता है, उसी प्रकार वासना एवं प्राण की गति से चित्त और चित्त से वासना तथा प्राण की गति, यह क्रम चलते रहता है।'

इस समग्र हकीकत को संक्षिप्त में समझना हो तो यह कह सकते है कि वासना स्वयं ही उछल कर आत्मा में क्षोभ कर प्राण की गति को जागृत करती है, फलस्वरुप चित्त रुप बालक की उत्पति होती है। जब प्राण स्वयं गति कर आत्मा में क्षोभ कर कारण शरीरमय रागादि वासना को प्रेरित करता है और परिणाम स्वरुप चित्त रुप बालक अवतरित होता है। अतएव मुंडक उपनिषद भी कहता है कि 'एतस्माज्जायते प्राणो, मनः सर्वेन्द्रियाणि च' (२-१-३) अर्थात् मन आत्मतत्त्व में से प्राण के साथ ही स्फूरित होता है और समग्र शरीर में व्याप्त होकर रहता है।

मन की उत्पत्ति के इतिहास की अगर शोध करें तो उसके मूल हमें ब्रह्मांड की उत्पत्ति के इतिहास की ओर ले जाते है।भगवान स्वामिनारायण ने (ग.म.१२ वे)वचनामृत में इसके बारे में अति स्पष्ट बात कही है। परात्पर परब्रह्म परमात्मा सृष्टि की उत्पत्ति के हेतु मूल अक्षर की समक्ष प्रेरक दृष्टि करते है, तब मूलअक्षर सृष्टि की उत्पत्ति का संकल्प कर मूलपुरुष को प्रेरणा देते है। मूलपुरुष महामाया रुप मूलप्रकृति

के साथ संलग्न होती है, परिणाम स्वरूप प्रकृति द्वारा अनंत कोटि प्रधान (निम्नप्रकृति) और पुरुष रूप हरिण्मय गर्भ का जन्म होता है। तत्पश्चात प्रत्येक प्रधान पुरुष युग्म में से महतत्त्व एवं चित्त उत्पन्न होता है महतत्त्व में सूक्ष्म रूप से समग्र जगत विद्यमान है। महतत्त्व निर्विकार, प्रकाशमान, स्वच्छ और शुद्ध सत्त्वमय है। महतत्त्व में से जन्मे सात्त्विक अहंकार में से मन तथा इन्द्रियों के देवता उत्पन्न होते है। राजस अहंकार में से दस इन्द्रियाँ, बुद्धि तथा प्राण उत्पन्न होते है, तामस अहंकार में से पंचभूत तथा पंच तन्मात्रा का जन्म होता है। सात्विक अहंकार में से जन्मा हुआ मन स्त्री आदि पदार्थ की समग्र कामना की उत्पति क्षेत्र है तथा संकल्प - विकल्प रूप है तथा समस्त इन्द्रियों का नियंता है। भगवान कपिल मुनि रचित सांख्य दर्शन मन की उत्पत्ति के उपर्युक्त उपक्रम को समर्थन देता है। सांख्य दर्शन यह दावा करता है बुद्धि से लेकर पत्थर के टुकड़े तक के सभी पदार्थ एक ही पदार्थ में से बने है। उनमें जो फर्क है उनकी सूक्ष्मता या स्थूलता के कारण है। सुक्ष्म अवस्था कारण है तथा स्थूल अवस्था कार्य है।

हमारा योगशास्त्र संपूर्ण रूप से सांख्य दर्शन पर आधारित है। सांख्य एवं योग के समन्वय द्वारा ही हम अपने मन की उत्पत्ति की घटना को सम्यक् रूप से समझ सकते है। हमारे योगशास्त्र समझाते है कि प्राणशक्ति पाँच स्वरूप धारण कर हमारे शरीर का पोषण करती है। प्राण, व्यान, अपान, समान एवं उदान। इन पाँचो में से जो समान है वह शरीर के रोम-रोम में व्याप्त है और उसकी मदद से ही मन क्रियाशील

होता है। सारे शरीर में संचार कर हमारी पाँच ज्ञानेन्द्रिय तथा पाँच कर्मेन्द्रिय द्वारा बाह्य जगत का अनुभव करवाता है।

उपनिषद एक अत्यंत चिंतनीय रूपक है। इस शरीर रूप जगत में जठर रूप वेदी है, उसमें जठराग्नि रूप अग्नि में अन्न रूप समिध द्वारा प्राण रूप देव को आहुति दी जाती है। इसीलिये वैदिक संस्कारानुसार भोजन के समय पाँचो प्राणों को अनुक्रम से प्राणाय स्वाहा, व्यानाय स्वाहा, अपानाय स्वाहा, समानाय स्वाहा और अंततः उदानाय स्वाहा इस प्रकार बोलकर ग्रास लिये जाते है। छांदोग्य उपनिषद में लिखा है कि इस प्रकार अन्न द्वारा प्राण को आहुति देने से प्राण तृप्त होते है।

यहाँ जिस प्राण का उल्लेख किया गया है, उसका अर्थ अति व्यापक है। प्राण का अर्थ केवल श्वास ही नहीं,अपितु श्वास जिसे गति प्रदान करता है, श्वास की चेतना शक्ति है, वह प्राण है। प्राण एवं मन का अति गाढ संबंध है। जब प्राण का संचार होता है, तब मन चिंतन करता है तथा मन जब संकल्प करता है, चिंतन करता है और इस प्रकार सक्रिय होता है, तब प्राण का विस्तार होता है। प्राण का अतिरिक्त भंडार दिमाग एवं नाड़ी केन्द्र में होता है। अगर हम प्राण का नियंत्रण कर सके तो दुनिया की हरेक शक्ति का नियंत्रण अपने आप हो सकता है। इस जगत में जो प्राण बल है, वह हमारी श्वास द्वारा हमारे प्राण प्रवाह के साथ संलग्न है। हम श्वास के साथ संकल्प का समन्वय करें तो ब्रह्मांड का अगाध प्राण बल हमारा हो सकता है। वेग, गुरुत्वाकर्षण, विद्युत आदि रूप में प्राण ही अभिव्यक्त होता है।

अष्टांग योग में प्राणायाम के माध्यम से प्राण के निरोध द्वारा मन का निरोध किया जाता है, परंतु ध्यान द्वारा

चित्त का निरोध किस प्रकार से होता है यह समझाते हुए भगवान स्वामिनारायण (ग. प्र. २५ में)वचनामृत में कहते है: 'प्राणायाम के द्वारा प्राण का निरोध होता है, उसके साथ ही चित्त का निरोध होता है, उसी प्रकार चित्त के निरोध द्वारा प्राण का निरोध होता है। चित्त का निरोध कब होता है? जब सभी स्थान से वृत्ति टूटकर एक भगवान में संलग्न होती है, भगवान में वृत्ति संलग्न तब होती है, जब सभी स्थान से वासना टूटकर एक भगवान के स्वरूप की वासना होती है .....तब उसका चित्त भगवान के स्वरूप में संलग्न होता है, उस चित्त के निरोध के द्वारा प्राण का निरोध होता है.....अतः जिस भक्त की चित्त वृत्ति भगवान के स्वरूप में संलग्न हो, उसे अष्टांगयोग बिना साधे ही प्राप्त हो गया है।'

मन की उत्पत्ति की विशद् चर्चा को संक्षिप्त में सारांश कहे तो यह कह सकते है कि जीवात्मा ने जन्मांतर में संचित किये हुए कर्म रूप वासना और प्राण, उभय के संयोजन से मन निपजता है। यह अति सूक्ष्म आकाश तत्त्व का बना हुआ है। हमारे ऋषिमुनिओं ने काव्यात्मक परिभाषा में यह कहा है, 'पुरुष और प्रकृति के संयोग से चित्त जन्मता है।' पुरुष यानि आत्मा तथा प्रकृति यानि माया, अविद्या, अज्ञान, वासना प्रकृति के अति सूक्ष्म अंश में से चित्त का शरीर तथा पुरुष की अति सूक्ष्म शक्ति में चित्त की शक्ति का जन्म होता है!

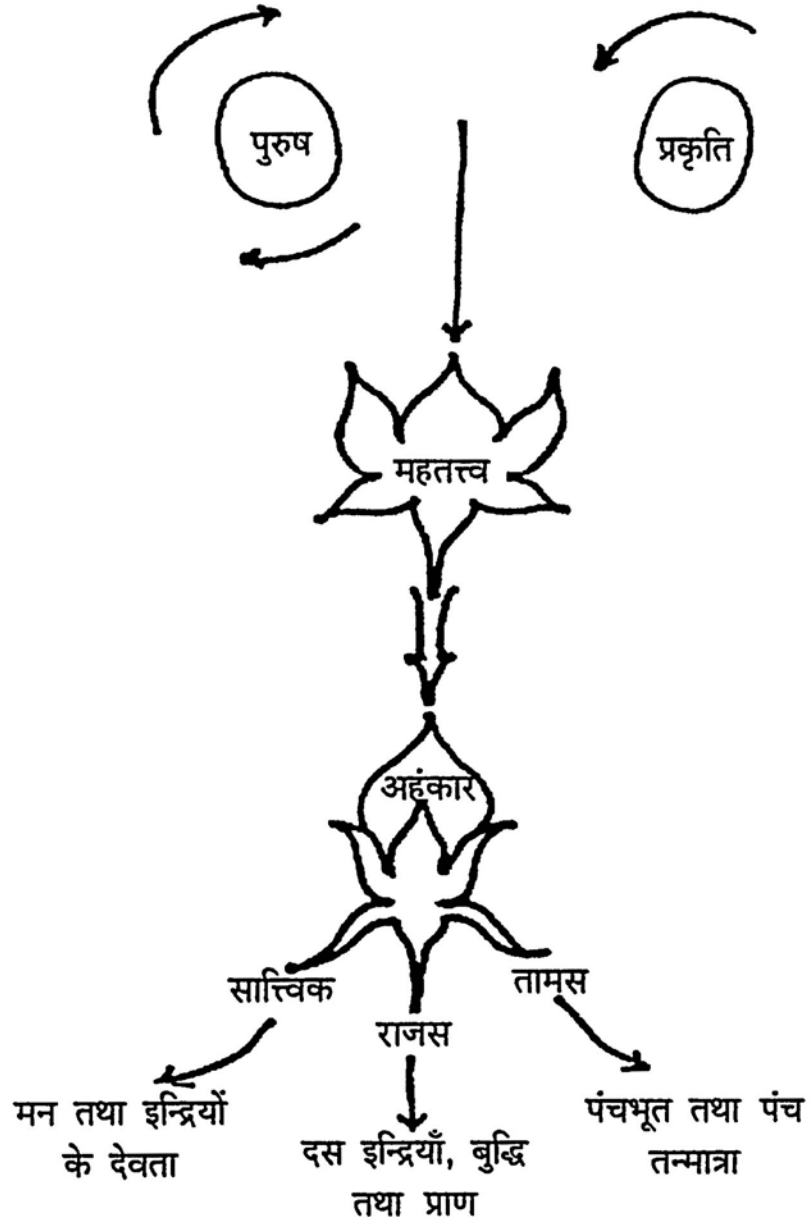

कपिल मुनि रचित सांख्य दर्शन के आधार पर मन की उत्पत्ति

मुकाम चतुर्थ
मन का आधार

छांदोग्य उपनिषद में एक सुंदर आख्यायिका आती है। महर्षि उद्दालक का पुत्र श्वेतकेतु बारह साल का होता है, तब महर्षि उसे विद्याप्राप्ति के लिये गुरु गृह भेजते है। श्वेतकेतु बारह साल तक गुरुगृह रह कर वेदादि सर्व शास्त्रों में निष्णात होकर पिता के पास लौटता है। वेदशास्त्रों में निष्णात होने के कारण श्वेतकेतु को विद्या का गर्व होता है। अहंकार के कारण इतराने लगता है, पिता के पास आकर कहता है, 'पिताश्री, मैं सर्व वेदों में निष्णात होकर आया हुँ। आप जो कहे सुना सकता हुँ।' महाज्ञानी उद्दालक पलभर में जान जाते है कि पुत्र को अभी पूर्ण ज्ञान प्राप्त नहीं हुआ है, अधुरापन होने की वजह से गर्जना करता है। थोड़ी समझदारी की कमी है उसे पूर्ण करनी ही होगी। महर्षि कहते है, 'बेटा, तुम पंद्रह दिनो तक कुछ न खाना, प्यास लगने पर पानी पिना। पंद्रह दिनों के बाद मेरे पास आना तब मैं वेदों के बारे में पुछूँगा।' श्वेतकेतु ने कहा 'अच्छा पिताश्री .....'

श्वेतकेतु ने उपवास आरंभ किये एक दिन .....दो दिन .....इस प्रकार एक सप्ताह बीत गया। उसके शरीर में कमजोरी लगने लगी। मन सुस्त रहने लगा। भुखे पेट से शांति से नींद भी नहीं आती थी। स्मृति धुँधली होने लगी। चिंतन विलीन ह्मेने लगा। कृष्ण पक्ष के चँद्र की सदृश धीरे-

धीरे मन की शक्ति क्षीण होने लगी। सोलहवें दिन पिता की समक्ष जा कर उसने पूछा, 'तात, क्या सुनाउँ?' महर्षि ने पुत्र के मुख की ओर देखते हुए कहा: 'वत्स, ऋक् यजुर और सामवेद की ऋचा सुनाओ।' श्वेतकेतु ने याद शक्ति को टटोला, परंतु अफसोस .....कुछ याद नहीं आया। अथक प्रयत्न किये परंतु मिथ्या! उसका अहंकार बर्फ की सदृश पिघल गया, पश्चाताप के आँसुओं से आँखे भर आई। ऋषि की गोद में सर रखकर वह रो पड़ा। 'प्रभु, मुझे कुछ याद नहीं आ रहा है, कहाँ गया मेरा ज्ञान?' महर्षि की तेजस्वी आँखे भी हर्षाश्रु से भीग गई। पुत्र को समझाते हुए उद्दालक बोले: 'हे सोम्य! उपवास करने से अन्न के बिना मन की शक्ति क्षीण हो जाती है। बेटा, एक बात समजो, महाभयंकर अग्नि बुझ गया हो और उसकी एक चिनगारी शेष बची हो वह बड़ी चीज को जला नहीं सकती है। उसी प्रकार उपवास करने से तेरे मन की स्मरण शक्ति क्षीण होकर नाममात्र बची है। उसके द्वारा तुम ऋचा जैसी मुश्किल बात याद नहीं कर सकते। वत्स! अब पहले तुम खा लो पश्चात ही तुम मेरी बात समझ सकोगे।' श्वेतकेतु सोलहवें दिन भोजन करता है। उदर में अन्न जाने से मन प्रफुल्लित होता है।

भोजन के पश्चात महर्षि के पूछने पर वह सब कुछ सुनाता है। श्वेतकेतु को भी आश्चर्य होता है उद्दालक उसे समझाते हुए कहता है: 'वत्स! अभी मैने तुम्हें बताया उसके अनुसार महाभयंकर अग्नि बुझने के पश्चात शेष बची चिनगारी पर सूखी हुई घास डालने से वह तुरंत ही जलने लगती है और धीरे-धीरे आग का स्वरूप ले लेती है। उसी

प्रकार तेरे मन की शक्ति के सोलह भाग में से बचा एक भाग अन्नरूप सूखी घास मिलने से प्रज्वलित हो उठी, अतः अब तुम वेदों की ऋचा को याद कर सकते हो। हे सोम्य! अन्नमयं हि मनः। मन अन्नमय है।' कुछ रुकने के पश्चात महर्षि कहते है: 'पुत्र भोजन के पश्चात जठराग्नि द्वारा पचाये गये अन्न के तीन भाग हो जाते है। तीन भागों में विभक्त अन्न का जो अत्यंत स्थूल अंश है, वह मल रूप में बड़ी आँत में चला जाता है, जो मध्यम अंश है वह रसादि क्रम से अग्रसर होकर अंततः माँस में रूपांतरित होता है, जो अत्यंत सूक्ष्म अंश है वह ऊर्ध्व दिशामें गति कर हृदय में पहुँच कर हिता नामक सूक्ष्म नाड़ी में प्रवेश कर मन स्वरूप में परिवर्तित होता है।' इस प्रकार इस आख्यायिका द्वारा सहज ही समझ में आता है कि मन अन्नमय है, मन का मुख्य आधार आहार है। फलतः कहावत है 'जैसा अन्न वैसा मन' अति गहन चिंतन के पश्चात यह बात भली भाँति समज में आती है कि हमारी प्रत्येक इन्द्रिय के आहार की सूक्ष्म असर हमारे मन पर अवश्य ही होती है।

हम जो भोजन ग्रहण करते है वह किस प्रकार की खाद्यसामग्री से, किस के हाथों से कितनी शूचिता से बना है यह अत्यंत महत्व का है। आप भोजन ग्रहण करते है उससे पूर्व उस पर कितनों की दृष्टि पड़ी है, यह भी अन्न की मनोगामी असर पर असर करता है। इसीलिये भोजन ग्रहण करने से पहले भगवान को भोग लगा कर प्रभु के प्रसाद के रूप में ग्रहण करने से अन्न पर की संभवित नकारात्मक असर को टाल सकते है। स्वामी विवेकानंद 'राजयोग' में लिखते है:

'आहार के बारे में कुछ नियम आवश्यक है; मन को शुद्धातिशुद्ध बनाये ऐसा आहार लेना चाहिये। अगर आप प्राणी संग्रहालय में जाए तो इसका उदाहरण तुरंत ही दृष्टिगोचर होगा। हाथी बड़ा प्राणी होने के बावजुद शुद्ध शाकाहारी होने की वजह से शांत एवं नरम स्वभाव का है, जबकि शेर-बाघ मांसाहारी होने की वजह से क्रूर एवं अशांत(Restless) प्रतीत होते है।

दो व्यक्ति एक साथ एक ही समय में एक जैसा ही भोजन करते हुए भी भोजन की असर उन दोनों के मन पर भिन्न-भिन्न प्रकार की होती है, क्योंकि इसका कारण भोजन करते समय मन की स्थिति एवं भाव है, उसका भी महत्वपूर्ण भाग है। मीराबाई ने राणा का भेजा हुआ ज़हर भी प्रभु का चरणामृत मानकर पिया तो ज़हर भी अमृत समान जीवनदायी बन गया था।

एक बार भगवान बुद्ध लुंबिवन में एक वृक्ष के नीचे बैठे थे। पास के नगर में से तथागत के दर्शन को आये एक श्रेष्ठी ने प्रभु से प्रश्न पुछा: 'भगवन्, सत्य क्या है?' भगवान ने प्रसन्नता से कहा: 'आपका मन ही सत् है, चित्त आनंद है अगर आप समझे तो!!' भगवान ने पिछले विधान पर अधिक जोर दिया –'अगर आप समझे तो!' मन को अगर हम समझ सके तो ही उसके उस पार स्थित सच्चिदानंद रूप आत्मा की अनुभूति सहज हो जाती है।

मुकाम पाँचवां
मन के प्रकार

वैसे तो मन एक ही है, परंतु उसका अनुभव दो प्रकार से होता है। एक जागृत मन, जिसे बाह्य या बहिर्मुख मन भी कहा जाता है और दूसरा अजागृत मन जिसे आंतर मन या अज्ञात मन कहा जाता है।

हमारी चेतना का बहुत कम भाग जिसमें प्रकट होता है, उसे हम जागृत मन कहते है। वह अनेक प्रकार की इच्छाओं से भरा है। इन इच्छाओं में जब विरोधाभास होता है तब हमारा मन विक्षुब्ध होता है परिणाम स्वरूप हमारे शरीर में थकान महसूस होती है। ध्यान के द्वारा प्रथम एकाग्रता और बादमें निराग्रता आती है। एकाग्रता में विचारों के विरोध का शमन होने से, शक्ति के अधिक व्यय की बचत होती है। इस प्रकार एकाग्रता शक्ति की अधिक बचत करती है। जबकि निराग्रता में शक्ति का करीब संचय होता है। जबकि समाधि में शक्ति का पूर्ण संचय होता है।

हमारे स्थूल शरीर के अणु-अणु में व्याप्त मन, आंतर मन ही है। जो सदैव कार्यशील रहकर शरीर की नवरचना और संरक्षण करता है। पत्थर, वनस्पति, कीट,पक्षी एवं मनुष्य में आंतर मन समान रूप से व्याप्त एवं क्रियाशील है। पशु पक्षी तथा वनस्पति में जागृत मन सुषुप्त है। अतः आंतर मन को खुला मैदान मिला है, इसी कारण से पत्थर की

आयुष्य और स्थिति लंबे काल तक एक जैसी ही टिकी रहती है। वनस्पति में भी जागृत मन बहुत कम मात्रा में होने से उसकी नवरचना एवं संरक्षण की कार्यवाही अत्यंत प्रबल है, परिणाम स्वरूप बरगद, पीपल आदि वृक्ष सदियों तक टिके रहते है और जीते है। पशु-पक्षी तथा जीव-जंतु में मनुष्य की तुलना में राग भी कम होते है। इसका कारण उनके जागृत मन से आंतर मन बलवान होने से शरीर की नवरचना एवं संरक्षण स्वाभाविक तरीके से होता है।

ख्यातनाम मनोवैज्ञानिक डॉ. सिग्मंड फ्रोइड कहते है: 'हमारे दैनिक जीवन में होने वाली कई घटनायें हम भूल जाते है ऐसा उपरी तौर पर लगता है, परंतु हकीकत में कुछ भुलते नहीं है। सब कुछ हमारे अजागृत मन में (Unconciouc mind) में संग्रहित होता है। ये दबी हुई स्मृति ही हमें दर्शित करती है। उसे ही हम अंतःप्रेरणा यानि Intuition कहते है। जब हम अंतःप्रेरणा या स्फूरणा के विरुद्ध कोई कार्य करते है, तब मन में विकृति पैदा होती है। यह विकृति कभी क्रोध द्वारा या निंदा द्वारा प्रकट होती है, परंतु ऐसा वार-वार हो और विकृति बाहर न आ सके तो, वह अजागृत मन को क्षति पहुँचाती है। परिणाम स्वरूप अज्ञात मन में एक प्रकार का असंतुलन पैदा होता है, जो समयांतर में रोग का स्वरूप धारण करता है।'

डॉ.सिग्मंड फ्रोइड आंतर मन के तीन भाग करते है: ईड,अहम् और विशेष अहम्। ईड में हमारे पूर्वजो की आदिम प्रकार की प्रवृत्तियाँ भरी रहती है। आदिमानव जिस प्रकार से जीते उनके आहार, निंद्रा, भय, और मैथून के आसपास ही

सर्व वृत्ति- प्रवृत्ति रहती थी, यह सभी कुछ ईड में संग्रहित रहता है। अहम् की वृत्ति पर हमारा समस्त अभिगम रहता है। जब कि अहम् की तालिम हमारे संस्कार और मान्यताओं से मजबूत होती है। मान्यताओं के कारण इस विश्व में देश-देश के बीच, कौम-कौम के बीच, धर्म-धर्म के बीच, राज्य-राज्य के बीच, ज्ञाति-ज्ञाति के बीच और मनुष्य-मनुष्य के बीच सदियों से झगड़े एवं युद्ध चल रहे है। मानव सब कुछ छोड़ने को तैयार हो सकता है, परंतु मान्यता छोड़ने को तैयार नहीं हो सकता है।

जागृत अवस्था में ये वृत्तियाँ संस्कार के बँधनों के कारण अव्यक्त रहती है। परंतु नींद में वे स्वप्न द्वारा व्यक्त होने की कोशिश करती है। सभी वृत्तियाँ एक साथ व्यक्त होने की कोशिश करती होने के कारण विकृत रूप से प्रकट होती है। ईड, अहम् और विशेष अहम् साथ में ही व्यक्त होने के कारण स्वप्न का कोई मेल नहीं होता है। सारी रात देखे हुए स्वप्न को अगर लिखने जाए तो पाँच-छः वाक्यों में हम लिख सकते है, क्योंकि अधिकतर स्वप्न निरर्थक और उलझन भरे होते है।

हमारे शरीर में होते छोटे-बड़े रोग बिना कारण यूँ ही नहीं हो जाते है। आंतर मन के कार्य में बार-बार विक्षेप होने से ही व्याधि होती है। बंगाल में श्री श्रीठाकुर अनुकूलचंद्र नामक एक गृहस्थ संत हो गये। एक बार सुबह के समय उनके पास दुर्गानाथ नामक उनका भक्त आकर कहने लगा, 'ठाकुर, कई महिनों से मुझे भयंकर पेचिश हुआ है, कई दवाईयाँ लेने के बाद भी ठीक नहीं हो रहा है। आप कुछ

कृपा करें....' श्री ठाकुर बोले, 'ओहो..... यह बात है? भगवान की कृपा से अब बिना दवाई के ही ठीक हो जायेगा। दोपहर का भोजन आप यहीं करके जाइयेगा।' श्री ठाकुर ने दुर्गानाथ के लिये नये चावल तथा मोटे वाल की दाल बनवाये। भोजन के समय भोजन देखकर दुर्गानाथ सोच में पड़ गये। श्रीठाकुर उनका मनोभाव जान गये। उन्होंने कहा, 'दादा, डरिये नहीं भोजन कीजिये और संतुष्ट होकर खाईये।' कई महिनों के बाद मनभावन भोजन मिलने के कारण दुर्गानाथ भोजन पर टूट पड़े। पूर्ण संतुष्ट होकर खाया, तब ठाकुर ने उनसे कहा, 'जाओ जाकर सो कर आराम करो।' लंबी वामकुक्षी के पश्चात जब दुर्गानाथ उठे तब बिलकुल स्वस्थ थे। पेचिश की बीमारी के कोई लक्षण प्रतीत न होने से उन्होंने श्रीठाकुर से पूछा: 'ठाकुर बिलकुल विरुद्ध धर्मी खुराक खाने के बावजुद यह रोग किस प्रकार ठीक हुआ? इसमें तो कार्य कारण का कोई संबंध नहीं दिखता है!

श्रीठाकुर ने उन्हें समजाते हुए कहा: 'आपके अज्ञात मन को पढ़ने से मुझे लगा बहुत समय पहले आपको मोटे चावल और मोटे वाल की दाल खाने की तीव्र ईच्छा हुई थी, परंतु संयोगानुसार वह पूरी न हो सकी थी। उस प्रबल ईच्छा का आंतर मन में दमन होने से आँत के स्नायुओं में विकृति पैदा हुई। उसमें से यह दर्द शुरु हुआ। यह खुराक पहली नजर में विरुद्ध धर्मी लगते हुए भी, इससे ईच्छा का शमन होने से दर्द ठीक हो गया।'

इस प्रकार हमारे स्वास्थ्य पर हमारे मानस का प्रबल

प्रभाव है। फलस्वरूप मनोवैज्ञानिक औषध की जगह दर्दी को सहानुभुति, उष्मा एवं आत्मियता देकर उनके आंतर मन में दबी वृत्तियों को बाहर लाकर उनके रोग दूर करते है। इसके लिये डॉ. फ्रोइड ने रेचन पद्धति बताई है। जो भी तकलीफ, तनाव या संघर्ष हो उसे बाहर लाईये। एकांत स्थल पर खुशनुमा वातावरण में बैठकर एक कागज़ पर आपके मन के विचार और नापसंद बातों की फरियाद लिखीये। उसे बार-बार पढिये इसमें अन्य फरियाद बढाइये, मन की हरेक फरियाद को याद कर लिखीये, अंततः उसे फाड़ दिजिये। इसप्रकार बार-बार करने से मन हल्का होते जाएगा। डॉ. फ्रोइड की इस रेचन पद्धति के विकल्प के रूप में प्रार्थना एवं नामस्मरण उत्तम उपाय है। प्रार्थना के दरमियान मन में से नकारात्मक भावों का उन्मुलन होता है तथा नामस्मरण के द्वारा मन निर्मल होता है।

अखंड अजपाजप द्वारा हरिस्मरण करने से परमात्मा के प्रति निष्ठा रूप वृत्ति बाह्य मन तथा आंतर मन में लीन होने लगती है। परिणाम स्वरूप पूर्व की रागादि वृत्तियाँ दब जाती है और क्रमशः क्षीण होने लगती है। इसमें श्रद्धा महत्वपूर्ण कार्य करती है। श्रद्धापूर्वक धीरज से दीर्घ काल पर्यंत स्मरण करते रहने से मन उसके सहज स्वरूप में आकर पूर्व की सर्व रागादि वृत्ति तथा वासना को फेंक देता है। जो उद्देश्य सुमिरन से सिद्ध होता है, वह ध्यान से भी सिद्ध हो सकता है। ध्यान में मन विचारशून्य (Thoughtless) होता है और विचारशून्य मन क्रमशः आंतरिक भँवर एवं वृत्तियों को झाड़-पोंछ कर साफ

कर देता है। मन निर्मल होते ही शांत हो जाता है। मन शांत होने पर ही हम देख सकते है कि हमारा वास्तविक स्वरूप क्या है?

मुकाम छठ्ठा

मन का स्वभाव

हम सब का सामान्य अनुभव है कि हमारा मन सदैव एक ही परिस्थिति में नहीं रहता है। कई बार बहुत अच्छे विचार आते है तो कभी खराब! कई बार मन बहुत सक्रिय हो जाता है, तो कई बार बिल्कुल निष्क्रिय! इसका कारण है मन का त्रिगुणात्मक स्वभाव। हमारा मन मूलभूत गुणों का संमिश्रण है - सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुण।

सत्त्वगुण पवित्रता, ज्ञान और आनंद को उत्पन्न करने वाले समतुला का तत्त्व है। रजोगुण प्रवृत्ति, इच्छा और चंचलता उत्पन्न करने वाली गति शीलता का तत्त्व है। तमोगुण प्रमाद, अवसाद और भ्रम उत्पन्न करने वाला जड़ता का गुण है। तमोगुण मन को नीचे की सतह पर ले जाता है, इस अवस्था में मन में कोई विचार नहीं आता है। रजोगुण मन को तितर-बितर कर अस्थिर बनाता है तथा सत्त्वगुण मन को उच्चत्तर दिशा में ले जाता है। सत्त्वगुण की अवस्था में मन शांत एवं स्वस्थ होता है। इस अवस्था में चित्तरूप सरोवर की तरंगे थम गई होती है एवं उसका जल भी स्वच्छ हो गया होता है। यह स्थिति चित्त की निष्क्रियता की स्थिति नहीं है, अपितु अत्यंत सक्रियता की स्थिति है। शांत रहना शक्ति का सबसे बड़ा प्रदर्शन है। चंचल होना अत्यंत सरल है। घोड़े की लगाम को छोड़ दिया जाये तो घोड़ा आपको लेकर जहाँ चाहे

दौड़ जायेगा। यह तो कोई भी कर सकता है, परंतु जो व्यक्ति दौड़ते घोड़े की लगाम पकड़ कर उसको बस में कर रोक सकता है, वही ताकतवाला है। शांत चित्त वाला इन्सान वही कहा जाता है, जिसका मन की तरंग पर बस हो। क्रियाशीलता में ओछी कक्षा के बल का प्रदर्शन है और स्वस्थता में उच्च कोटि के बल का प्रदर्शन है व्यक्तिगत मन की रचना इन तीन गुणों की मात्रा के विविध संयोग और विनियोग द्वारा नियत होती है। मानव स्वभाव के वैविद्य और उसके मन की चंचलता का भी यही कारण है।

भगवान श्री स्वामिनारायण (ग.म.२३ में)वचनामृत में मन के स्वभाव के बारे में स्वयं की विशिष्ट शैली में कहते है, '.....जिसका मन बुरे विषय में तप्त नहीं होता एवं भले विषय में तुष्ट नहीं होता,ऐसा जिसका मन रहता हो उसे परम भागवत संत जानें; ऐसा मन होना सरल बात नहीं है..... मन का ऐसा स्वभाव है, जिस प्रकार बालक को सर्प, अग्नि तथा खुली तलवार को पकड़ने न दें तथापि दुःखी होता है, उसी प्रकार मनको विषय भोगने न दें तो दुःखी होता है और अगर भोगने दे तो विमुख होकर अतिशय दुःखी होता है। अतः जिसका मन भगवान में आसक्त हुआ हो और विषय के योग से तुष्ट-तप्त नहीं होता है उसे ही साधु समझें।'

स्वामी विवेकानंद 'राजयोग' में कहते है: 'इन्सान धार्मिक बनता है इसका प्रथम चिन्ह यह है कि वह आनंदित होता है..... सत्त्वगुण का स्वभाव है आनंदी होना। सात्त्विक मनुष्य को सब कुछ आनंदी लगता है, जब आनंदी भाव आ जाए तो यह समझे कि योग साधना में आगे बढ़ रहे है।'

मन चेतना की भिन्न-भिन्न भूमिकाओं पर क्रियाशील बनता है। चेतन भूमिका पर मन की सभी क्रिया सामान्य रूप से अहंकार युक्त होती है। अचेतन भूमिका पर सामान्यतः अहंकार का भाव नहीं रहता है। इन दोनों से उपर मन एक अधिक ऊँची भूमिका पर कार्य कर सकता है। उस भूमिका में मन सापेक्ष चेतना से भी उपर जा सकता है। जिस प्रकार अचेतन भूमिका चेतन भूमिका से नीचे है, उसी प्रकार इस सापेक्ष चेतन से उपर भी एक भूमिका है, जिसे 'अतिचेतन' भूमिका कहते है। यहाँ भी अहंकार नहीं होता है। परंतु अचेतन एवं अतिचेतन के बीच अधिक अंतर है।सुषुप्ति अवस्था में मन अचेतन भूमिका से परे होता है। उभय भूमिकाओं पर मन शांत है। अहंकार भावना से मुक्त है, परंतु सुषुप्ति में अज्ञान है, अधंकार है, तमस है। जब कि समाधि ज्ञानमय है, तेजोमय है, सात्त्विक है! अतिचेतन अवस्था में मन उसकी शुद्धत्तम अवस्था में होता है।

मुकाम सातवाँ
मन की विविध अवस्थाएँ

मन स्वयं को पाँच विविध अवस्था में प्रकाशित करता है। आप को अनुभव होगा कि मन कई बार चंचल हो जाता है। उस समय कभी आनंद का तो कभी विषाद का भाव होता है। इसे मन की क्षिप्त अवस्था कहते है, क्षिप्त अवस्था में मन चारों दिशा में तितर -बितर हो जाता है। इस अवस्था में मन केवल सुख और दुःख इन दो भावों का अनुभव कराता है। यह अवस्था कुछ अच्छी है। इस समय जगत में जो आतंकवाद फैला है, उसके मूल में मन की मूढ अवस्था कारण भूत है। मूढ अवस्था अर्थात् जड़ता, इसमें मन दुसरे को नुकसान पहुँचाने वाले अभिगम वाला होता है। आध्यात्मिक साधक जब ध्यान करने की शुरुआत करता है, तब मन उसकी विक्षिप्त (क्षिप्त से विशिष्ट) अवस्था में होता है। इस अवस्था में मन केन्द्रिय भूत होने का प्रयत्न कर रहा होता है। विक्षिप्त अवस्था उच्च आत्माओं के लिये स्वाभाविक है। जब कि क्षिप्त एवं मूढ़ अवस्था सामान्य कोटि के जीवात्माओं की मनःस्थिति दर्शित करती है। मन की एकाग्र अवस्था में मन केन्द्रित स्थिति में स्थिर रहने का प्रयत्न करता है और जब एकाग्रता की पराकाष्ठा आती है, तब मन उसकी अवचेतन दशा में समाधि में लीन होता है। यह मन की निरुद्ध अवस्था है।

सामान्यतः हमारा मन मूढ़ एवं क्षिप्त अवस्था में ही रहता है। मूढ अवस्था में हम निष्क्रियता और क्षिप्त अवस्था में चंचलता का अनुभव करते है। योग साधना या भक्तियोग द्वारा इसी मन को विक्षिप्त एवं एकाग्र बनाया जा सकता है। धार्मिक यम-नियम का उद्देश्य हमारे मन को एकाग्र बनाने का है। ऐसा एकाग्र मन प्रवृत्ति के किसी भी क्षेत्र में क्रियाशील बनता है, तब उसमें प्रकाशित हो उठता है, एकाग्र मन से ही विद्यार्थी विद्याक्षेत्र में चमकता है, व्यापारी व्यापार में समृद्ध बनता है। संगीत या कला का साधक उसके क्षेत्र में सिद्धि प्राप्त करता है। मन की एकाग्रता के बिना किसी भी क्षेत्र में सफलता आकाशकुसुमवत् मुश्किल ही नहीं असंभव भी है! एकाग्रता के अभ्यास एवं इसके उत्तरोत्तर विकास द्वारा मन उसकी सर्वोच्च निरुद्ध अवस्था में अतिचेतन भूमिका पर समाधि का अलौकिक अनुभव करता है।

मनोनिग्रह द्वारा मन की एकाग्रता का क्रमशः विकास होता है। क्षिप्त या मूढ़ अवस्था में स्थित मन को कभी कोई योगी या मुक्त स्वयं के संकल्प बल से निरुद्ध अवस्था में ले जाए, तब उस सामान्य कक्षा के जीवात्मा को भी समाधि का दिव्य अनुभव होता है। भगवान स्वामिनारायण ने जब समाधि प्रकरण चलाया था, तब सिद्ध मुक्तों से लेकर पशु, पक्षी तथा सामान्य जीव सभी को समाधि का दिव्य अनुभव एक समान रूप से होता था। हालाँकि, लाड़कीबाई नामक एक भाट स्त्री को समाधि के दौरान सुनाई देते प्रणव नाद से अतिशय भय लगा था, परंतु श्रीहरि के द्वारा उनको सम्यक् ज्ञान देने से, अंततः वे समाधिनिष्ठ मुक्त बनीं थीं।

बंगाल के ख्यातनाम संत रामकृष्ण परमहंस के जीवन का एक प्रसंग है। वे समाधिनिष्ठ थे, यही नहीं वे कई पात्र जीवों को भी समाधि करवाते थे। एक बार उनके भाँजे हृदय मुखोपाध्याय ने कहा: 'मामा, आप कई लोगों को समाधि करवाते हो... मुझे भी अनुभव करना है!' रामकृष्ण परमहंस ने इन्कार करते हुए कहा: 'हृदु, तेरा मन अभी उस अनुभव के लिये तैयार नहीं है। अतः तुम समाधि का आग्रह न करो।' परंतु हृदयनाथ न माना। उसके दुराग्रह के कारण अंततः रामकृष्ण ने उसे समाधि करवाई। परंतु समाधि का अनुभव हृदयनाथ का मन सह न सका वह पागल हो गया। मन की योग्य अवस्था अर्थात् पात्रता के बिना ध्यान या समाधि का अनुभव हानिकारक साबित हो सकता है।

समाधि अवस्था का वर्णन करते हुए महर्षि पतंजलि योगसूत्र में कहते है; 'तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्।' तालाब के जल तरंग थम कर शांत होते ही हम तालाब का तल देख सकते है। मन की स्थिति भी यही है। मन के शांत होते ही हम जान सकते है कि हमारा वास्तविक रूप क्या है, तब हम विषयों के साथ मिश्रित हुए बिना हमारे स्वरूप में स्थित रहते है।

मुकाम आठवाँ
वैश्विक चेतना और मन

समुद्र की छोटी बड़ी लहरें समुद्र के समग्र अस्तित्व के एक भाग रूप होती है। उसी प्रकार संसार की प्रत्येक व्यक्ति का मन विश्व मन की छोटी-बड़ी लहरें सदृश है। हमारा मन उस विराट मन का ही अंश है। जिस प्रकार सागर की एक लहर दूसरी लहर के साथ जूड़ी रहती है, उसी प्रकार संसार की प्रत्येक व्यक्ति निज मन के द्वारा एक दूसरे के साथ जूड़ी रहती है। मन का तत्त्व प्रत्येक मनुष्य में समान है। जिस प्रकार सूर्य एक होते हुए उसके प्रतिबिंब अनेक है, उसी प्रकार विश्व मन के प्रतिबिंब को ही हम हमारा मन मानते है।

मन सर्वत्र निर्विकारी है, बाहर से आते हर विचार को वह छोड़ देता है, परंतु बुद्धि बार-बार प्रेरणा देकर मन को हिला देती है। हमारे संयोग, घटना, आसपास का वातावरण ये सभी उस प्रतिबिंब को धूमिल कर देते है। इस बात को अधिक स्पष्टरूप से समझाते हुए पू. विमला ठाकर कहतीं है: 'विश्व चेतना के हम सब विभाग है। वैश्विक मन सभी का एक ही है, मन से हम सभी अविभाज्य रूप से जूड़े है। वैश्विक चेतना सभी में एक ही होते हुए, हम में स्थित उस चेतना के अंश का तैतीसवें हिस्से जितना अहंकार, हम में 'मैं और मेरा' ऐसा द्वैत उत्पन्न कर क्लेश पैदा
करता है। इस अहंकार तले सभी एक है।' अगर अहंकार

पिघल जाए तो प्रभु प्राप्ति जल्द ही हो जाए! सर्व में एक ईश्वर विद्यमान है। स्वयं की तरह ही सभी को दृष्टिकृत करें, जो स्वयं को पसंद न हो वह कार्य अन्य के लिये न करें। इस प्रकार की समझ तथा इसके परिणाम से जीवन में आता सदाचार हमारे मन को अहंकार से परे ले जाता है।

शरीर एवं मन को शिथिल जागृत मन को तर्कहीन करें तो हम तुरंत ही विश्वचेतना के साथ जुड़ जाते है। हमारे जागृत मन के कुछ नीचे ही वैश्विक चेतना का महासागर गर्जना कर रहा है। रात्रि को निंद्रा के दौरान स्वप्न में हमारी चेतना विश्वचेतना से अधिक करीब होने के कारण स्वप्न द्वारा हमें अवश्य भविष्य दर्शन होता है। विचार संक्रमण की घटना (Mental telepathy) के पीछे भी यही रहस्य छूपा है। अमेरिका में हेरोल्ड शर्मन नामक मनोवैज्ञानिक ने Extra sensory perception (ESP)के बारे में गहन संशोधन कर अजोड़ सिद्धि हाँसिल की है।

अमेरिका में सन १९६५ के मई की १६ तारीख को चार पेसेन्जर के साथ सिडनी गर्बर का प्लेन गुम हुआ। वॉशिंगटन में उसने आखिरी मेसेज दिया, उस समय वह वेन्टाशी सरोवर के ईलाके में तूफान का सामना कर रहा था। तत्पश्चात उसकी कोई खबर न मिलने से हेरोल्डशर्मन की भतीजी जेनीफर ने अपने मित्र सिडनी की तलाश करने शर्मन से विनंती की। शर्मन ने सिडनी के हस्ताक्षर पर ध्यान केन्द्रित कर वैश्विक चेतना के साथ संपर्क कर ढूँढ निकाला कि वेन्टासी सरोवर से ४० मील दूरी पर ४५०० फीट की ऊचाई पर सिडनी का प्लेन पर्वत से टकरा कर टूट पड़ा था। घटना

स्थल की तलाश करने में चार महिने लगे, परंतु शर्मन ने बताया था उसी स्थान से चार व्यक्ति के अस्थि तथा प्लेन का भँगार मिला। शर्मन की तलाश सही होने से अमेरिका में हाहाकार हो गया। अमेरिकन मन की अधिक शक्ति जानने के लिये उत्सुक हुए। लोंगो के मन में अनेक सवाल उठने लगे: क्या विश्व के समग्र वातावरण के साथ हमारा मन तादात्म्य स्थापित कर सकता है? क्या दुनिया में होने वाली सभी घटनाएँ वातावरण में अपनी छाप अंकित करती होंगी? इस विषय में जो आधुनिक संशोधन हुआ, वह हमारे पुराणों की कपोल कल्पित लगने वाली कई कथाओं को बिलकुल सच साबित करता है।

हमारा शरीर यानि पिंड एवं जगत यानि ब्रह्मांड, इन दोनों में एकता है। या पिंडे सा ब्रह्मांडे। हमारे मन की वैश्विक चेतना के साथ एकता होने से सारा जगत हस्तामलवत् देख सकते है, सुन सकते है और जान सकते है। पश्चात विश्व का कोई भाग अनजान नहीं रहता है। विश्व की कोई घटना अनजानी नहीं रहती है! हमारे संत तथा सिद्ध मुक्तों के लिये यह प्राप्ति अत्यंत सहज थी। एक बार सद्गुरु स्वामी श्री वृंदावनदासजी को एक नवयुवान मुक्त ने पूछा: 'स्वामी, आप दीवाल के आरपार देख सकते है?' स्वामी ने नम्र भाव से कहा: 'भगवान की कृपा से यहाँ बैठे दीवार की आरपार ही नहीं ब्रह्मांड के आरपार भी देख सकता हूँ। ब्रह्मांड में कहाँ क्या हो रहा है, हो चुका है एवं होने वाला है, मैं जो देखना चाहुँ तो देख सकता हूँ।' सिद्ध मुक्तों के लिये यह सहज स्वाभाविक है, परंतु मुमुक्षु जब परमात्मा की

प्रसन्नता के साधन के रूप में ध्यान-भजन-स्मरण करता है, तब परमात्मा की प्रसन्नता रूप ध्येय प्राप्ति से पूर्व प्रलोभन रूप ऐसी अनेक सिद्धियाँ उसके मार्ग में आती है। उसकी ओर सदंतर दुर्लक्ष कर अग्रसर हो तो ही प्रभु प्राप्ति संभवित होती है।

मुकाम नौवाँ
मन की अचिंत्य शक्ति

मन मानवी की अद्‌भूत शक्ति का केन्द्र है। इस जगत में ऐसी कोई चीज़ नहीं है जिसे मन द्वारा प्राप्त न किया जा सके। मन की शक्ति अगाध है। इसकी व्यापकता आकाश की सदृश अनंत है। इस संसार में असंभवित लगती घटनाएँ भी मन के द्वारा संभव हुई है और हो रही है। आंतरमन (Subconscious mind) और अंतरात्मा (Conscience) उभय के संयोजन से एक प्रचंड शक्ति का प्रादुर्भाव होता है। यह अद्‌भूत और चमत्कारिक शक्तिसंयोजन कैसी भी मानसिक, शारीरिक, सामाजिक और आर्थिक परिस्थिति में परिवर्तन लाने में समर्थ होती है।

महाभारत में एक कथानक है। दीर्घतपा नामक एक ऋषि थे। उन्होंने एक बार एक निश्चित मुहुर्त में यज्ञ करने का संकल्प किया। यज्ञ के लिये आवश्यक समिध तथा फल-फूल लेने वे जंगल में गये, वहाँ अनजाने में एक बँझर कुएँ में गिर पड़े। कुएँ में से तुरंत बाहर निकलना मुश्किल था। किसी की मदद मिले और बाहर आए उससे पहले यज्ञ का निर्धारित मुहुर्तकाल आ गया। अतएव ऋषि ने कुएँ में रहकर ही मानसिक यज्ञ किया एवं उन्होंने किया हुआ मानसिक यज्ञ देवताओं ने मान्य रखा। परिणाम स्वरूप यज्ञ की फलश्रुति के रूप में ऋषि को देवता का पद प्राप्त हुआ। मन द्वारा किया

गया कोई भी पुरुषार्थ स्थूल शरीर से किये गये किसी भी पुरुषार्थ की तुलना में अधिक जल्द एवं अचूक फल देता है। इसीलिये भगवान स्वामिनारायण ने भी मानसी पूजा को बाह्य स्थूल पूजा से अनेक गुना अधिक महत्व प्रदान किया है।

हररोज़ दिन में कुछ समय एकांत में बैठकर आत्मचिंतन करना चाहिये। मनमें आते विचार किसी भी प्रकार की प्रतिक्रिया किये बिना तटस्थ भाव से दृष्टिकृत करते रहे इस प्रकार नियमित रूप से दीर्घ काल पर्यंत करने से मन हमारा मित्र बन जाता है, यही नहीं मन से चिपके अहंभाव और अज्ञानता के आवरण दूर होने से अंतःकरण में आनंद और निःस्वार्थ प्रेम का प्राक्ट्य होता है। मन से, मन से परे स्थित चेतना का स्पर्श होता है, तब वह चेतना सचराचर विश्व में -सर्व में व्याप्त अनुभूत होती है।

श्री योगवासिष्ठ महारामायण में ब्रह्माजी महर्षि वसिष्ठ को कहते है: 'देहधारी मनुष्य स्वयं की मन रूप देह से जिस प्रकार प्रयत्न करता है उसी प्रकार उसे फलसिद्धि प्राप्त होती है। स्थूल देह का कोई भी प्रयत्न सिद्ध नहीं होता है, परंतु मन रूप देह का सर्व चेष्टित सफल होता है। मन सदैव पवित्र अनुसंधान स्मरण करे तो, जिस प्रकार चट्टान पर फेंके गये बाण निष्फल जाते है, उसी प्रकार उस पर किये गये जादू-टोना आदि अभिचार प्रयोग तथा श्राप निष्फल जाते है। मन जिसका अचूक अनुसंधान करे उसे कुछ क्षणों में प्राप्त कर सकता है। हे मुने, सर्व देहादि भाव मसल जाये तथापि मन द्वारा किया गया पुरुषार्थ निर्विघ्न फल देता है, क्योंकि पुरुषार्थ भी मन का ही भेद है।'

मन जिस बात का स्वीकार करता है, वही होती है और मन जिस बात का स्वीकार नहीं करता वह कभी भी नहीं होती है। १३ के अंक को अंग्रेज मनहूस मानते है, तो १३ के अंक से संबंधित सभी बातें अशुभ ही होती है। जबकि हमारे यहाँ त्रियोदशी को बिन पूछा मुहुर्त माना जाता है। धनत्रियोदशी के दिन हमारे यहाँ लक्ष्मी पूजन जैसे शुभ कार्य होते है। जीवन में होती शुभ-अशुभ घटनाएँ हनारे मन की पैदाइश है, अतः मन में कभी भी भ्रामक मान्यताओं या वहम को भरना नहीं चाहिये। मन को सदैव सकारात्मक (+ve)विचार द्वारा सबल बनाना चाहिये।

मन में हमारे स्थूल शरीर (Physical body)के रोगों को निवारने की अद्‌भूत शक्ति है। महर्षि अरविंद ने लिखा है: 'आपकी शक्तियों को संदेश दिजिये। आपके भीतर कार्य कर वे आपको निरोगी बनायेंगी।' हम सब का एक सर्व सामान्य अनुभव है कि जब घर में कोई बीमार होता है, तब रिश्तेदार-संबंधी- मित्र मिलने आते है। उन सभी की बातों में एक ही आश्वासन होता है - अच्छा हो जायेगा, चिंता न करें। यह बार-बार सुनने से बीमार के आंतरमन को तंदुरस्त होने की जोरदार सूचना मिलते ही रहती है, परिणाम स्वरूप वह तुरंत अच्छा हो जाता है। कभी इससे उल्टा भी हो जाता है। अगर कोई मित्र बीमार के मन में किसी बड़ी बीमारी का भय पैदा कर दे तो सामान्य बीमारी में से गंभीर बीमारी भी टपक पड़ती है। वास्तव में मन ही मनुष्य को जीलाता है। अमेरिका की एक मेडिकल कॉलेज में प्रोफेसर विद्यार्थीओं को विशूचिका के कल्चर(जंतु) ईकट्ठे कर समझा रहे थे:

'विद्यार्थी, इस कल्चर में इतने जंतु है कि हमारे डेम के पानी में डाल दिये जाए तो, जो दस लाख लोग यह पानी पीते है, विशूचिका में फँस कर उनकी मृत्यु हो जाए।' विद्यार्थी में से एक नटखट लड़के ने प्रोफेसर से कहा: 'सर, आपने ही हमें मेडिकल सायकोलोजी में सिखाया है कि हमारा मन ही हमें जीलाता है, तो यह कल्चर आप पी जाए, आपका मन मज़बूत होगा तो आपको कुछ नहीं होगा।' एक क्षण रूक कर प्रोफेसर वह कल्चर पी गये। प्रोफेसर को कुछ नहीं हुआ। दूसरे दिन वर्त्तमान पत्र के खबरपत्री के प्रश्न के उत्तर में प्रोफेसर ने कहा: 'मेरे लिये यह एक चुनौती थी। मैं निश्चित तौर पर मानता हुँ कि मन ही मारता है और मन ही जीलाता है, अतः मैने दृढ़ निर्धार किया कि यह ज़हर पीने के बावजूद मुझे कुछ नहीं होगा.... इसका परिणाम आपकी समक्ष है!' आजकल रॅकी तथा प्राणिक हिलिंग जैसी जो परिचर्या पद्धति प्रचलित हुई है, उसकी जड़ में भी मन की अचिंत्य शक्ति ही काम करती है।

डॉ.ब्रुनर ने मन की शक्ति के बारे में गहन संशोधन किया है। उनका कहना है: हमारा अंतःकरण, विचार शक्ति का स्थूल स्वरूप है। यह न्यूट्रोन नामक परमाणु से बना है। उस पर ऋण(-ve)या धन(+ve)ऐसे कोई संकेत नहीं है। कोई विद्युत धारा भी नहीं है। तथापि उसकी शक्ति विद्युत से प्रबल है। यह न्यूट्रोन हर पल विशाल शक्ति के वातावरण को असर करता है। हमारा हरेक विचार या शब्द वातावरण में एक अमिट छाप छोडता है। उसकी गति प्रकाश की गति से भी अधिक है। एक पल मात्र में वह पृथ्वी की सात प्रदक्षिणा कर

लेता है। डॉ. ब्रुनर कहते है, आप माने या न माने, परंतु मैं ने प्रयोग द्वारा यह साबित किया है कि शुद्ध मन द्वारा की गई निःस्वार्थ प्रार्थना पदार्थ के अणु-परमाणु की रचना में अचूक असर करती है। इसीलिये किसी संत या औलिया द्वारा आशीर्वाद के रूप में दिया गया प्रसाद या पानी में, वास्तव में शक्ति का आविर्भाव होता है और वह इच्छित परिणाम देता है। यह कोई वहम नहीं है बल्कि वैज्ञानिक सत्य है। किसी भी खाद्य पदार्थ या पानी पर प्रार्थना करने में आती है, तब प्रार्थना रूप से मन में से फेंकी गई शक्ति उस पदार्थ के अणु-परमाणु में संग्रहित हो जाती है और वह प्रसाद खाने वाले के आंतर मन को उत्तेजित कर इच्छित परिणाम पाती है। डॉ. बाराडक ने तो प्रार्थना द्वारा शक्ति पाते मन की गति को अति संवेदनशील फोटोग्राफिक प्लेट पर अदृश्य परंतु तेजस्वी तरंग को लेकर उसके फोटो लिये है। हमारे स्थूल शरीर के साथ एक भाव-शरीर भी हमारे आसपास आभा रूप से (Aura) संलग्न होता है। उस शरीर को हमारे विचार बहुत बड़ी असर करते है।

हमारी आसपास चेतना का सागर है। समस्त जगत इस चेतना से व्याप्त है। वैज्ञानिक इसे ईथर कहते है। हमारे विचारों की तरंग इस ईथर को आवरित कर उसका मूर्त स्वरूप रचता है। उसे संकल्प की मूर्ति यानि Thought forms कहते है। हरेक विचार हमारे शरीर में से उसके आनुसांगिक रंग की विविध तरंग उत्पन्न करता है। विचारों की तीव्रता पर उस स्वरूप की गति एवं आयुष्य अवलंबित होती है। उमदा विचारों के आकार अच्छे रंग के तथा अचूक स्वरूप के होते

है। प्रबल भक्तिभाव आकाश में उपर जाते अवकाशयान जैसे स्वरूप का होता है, तो क्रोध का स्वरूप मैले सिंदुरिया रंग का और बीजली जैसे आकार का होता है, किसी के प्रति प्रेम हल्के गुलाबी रंग के पक्षी जैसा आकार धारण करता है, तो सभी के लिये निःस्वार्थ प्रेम हल्के गुलाबी रंग के सूर्य जैसा आकार धारण करता है। विचार की तरंग विचार के विषय को नहीं, अपितु उसके स्वरूप को ही बाहर भेजती है। एक हिन्दु प्रभु भक्ति करता हो तो उसके विचारों की तरंग के असर क्षेत्र में अगर कोई मुसलमान आए तो उसमें वे तरंगे अल्लाह के प्रति इबादत बढायेगी और कोई ईसाई आए तो उसमें ईसु की ओर अदम्य प्रेम भावना जगाएगी। इस प्रकार उच्च विचार करने वाले द्वारा अनजाने में भी उसके आसपास वाले असंख्य लोगों का हित होता है।

मन के इस गहन विज्ञान को को परा मनोविज्ञान (Para-psycology)कहते है। आखिरी ६०साल में डॉ.रह्राइन इस विषय पर अति गहन संशोधन किया है। थियोसोफी सोसायटी के आद्यस्थापक मॅडम ब्लेवेट्स्की, चार्लस लेडबीटर तथा श्रीमती एनी बेसंट ने इस क्षेत्र में अधिक श्रम किया है। रशिया में भी परामनोविज्ञान विषय में बहुत संशोधन हुआ है। मोस्को में मिबाइलोवा नामक एक स्त्री ने आंतरराष्ट्रीय परिषद में मन की शक्ति के बारे में कुछ हैरत अंगेज प्रयोग कर दिखाये तब उसकी एकाग्र वृत्ति के परिणाम स्वरूप टेबल पर रखी चीजें उड़ कर उसके हाथ में आ जाती थी, स्टील का चमच बिना छूए मूड़ जाता था, मोमबत्ती अपने आप जल जाती थी। युरी गेलर ने भी ऐसे प्रयोग सार्वजनिक तौर पर

टी.वी.पर कर दिखाये। इसमें विस्मय की कोई बात नहीं है। यह सभी मन की अपार शक्ति का परिणाम है। मनुष्य का मन क्या कर सकता है इसका एक ऐतिहासिक उदाहरण देखें। चंद्रगुप्त मौर्य के दरबार में एक बार कुमारगिरि नामक योगी आए। उन्होंने आकर यह ऐलान किया; 'मैं सभी को भगवान के दर्शन करवा सकता हूँ।'

राजा द्वारा अनुमति प्राप्त होने पर योगी ने संकल्प बल से सृष्टि बनाई उसमें भगवान के विराट स्वरूप के दर्शन करवाये। राज दरबार में दो व्यक्तिओं के सिवा सभी को दर्शन हुए। राजनर्तकी चित्रलेखा और महामंत्री कौटिल्य चाणक्य, इन दो महानुभवों को दर्शन का अनुभव नहीं हुआ। राजा द्वारा योगी के पास स्पष्टता माँगने पर योगी ने स्वीकार किया कि यह मेरे संकल्प बल द्वारा सर्जित माया थी। जो दृढ़ मनोबल वाले हो उनके मन पर अन्य के संकल्प का कोई प्रभाव नहीं होता है, फलस्वरूप प्रतिभा संपन्न चित्रलेखा एवं चाणक्य के मन पर योगी के संकल्प का प्रभाव न होने से उनको दर्शन नहीं हुए।

मुकाम दसवाँ
मन की मर्यादाएँ

हमारा समस्त जीवन एक एक अटूट योग है। परंतु वह सार्थक तब ही हो, जब उसमें एक सूत्रता और संवादिता कायम हो। हम जीवन को पूर्ण रुप से जीने के स्थान पर टुकड़ों में विभाजित कर देते है। व्यापारिक जीवन में हम नैतिकता को छोड़ कर धन उपार्जन करते है, जबकि सामाजिक जीवन में सज्जनता का नकाब पहन कर उज्जवल होने का दंभ करते है, आध्यात्मिक जीवन में हम परमात्मा की प्राप्ति के लिये व्यर्थ प्रयत्न करते है। जीवन का एक हिस्सा मन को नैतिक स्तर पर नीचे ले जा कर अधोगति की ओर धकेलता है तो अन्य हिस्सा मन का ऊर्ध्वीकरण कर उसे आत्म कल्याण के परम पथ पर ले जाता है। इस विरोधाभास के कारण सारा जीवन पूर्ण होने तक मन का रुपांतर जरा भी होता नहीं है। मन वैसा का वैसा ही रहता है।

जीवन सदैव समस्त रुप से जीना चाहिये। जैसा मन व्यवसायमें, वैसा ही व्यवहार में और वैसा ही धर्मकार्य में रहना चाहिये। अर्थात् शुद्ध सत्व में रहकर ही व्यवसाय, व्यवहार और प्रभुभक्ति करनी चाहिये। विपरित संयोग में भी मन की एक सूत्रता का जतन करना हो तो सदैव निज अंतरात्मा की आवाज़ का अनुसरण करना चाहिये। मन की सबसे बड़ी मर्यादा यह है कि वह एक आज्ञांकित सेवक

(Obedient servant) परंतु अनाड़ी मालिक है। परिणाम स्वरूप जो व्यक्ति मन की गुलाम बन जाती है, उसका मन सतमुख विनाश कर देता है। मन के बस में होकर विनाश की ओर जाती व्यक्ति को अंतरात्मा बार-बार टोकती है, परंतु अंतरात्मा की आवाज की अविरत अवगणना करने से वह अंततः सुषुप्त होकर शांत हो जाती है। जो व्यक्ति निज अंतरात्मा की आवाज न सुन सकती हो उसे तुरंत ही सावधान हो कर जागृत मुक्तात्मा का आश्रय लेकर उनकी अनुज्ञा में रह कर स्वयं की सोई हुई अंतरात्मा को जगानी चाहिये।

मन जैसे अनाड़ी मालिक की गुलामी में से छूट कर उसे स्वयं का आज्ञांकित सेवक बनाना हो तो मन की मर्यादा को सम्यक् भाव से समझ लेना जरुरी है। भगवान श्री स्वामिनारायण ने स्वयं के धर्मग्रंथ वचनामृत में इसके बारे में अति विस्तृत चर्चा की है। श्रीहरि कहते है: मन स्त्री आदि की काम की उत्पत्ति का क्षेत्र है, वह संकलप-विकल्प रूप है (ग.प्र.१२) मन में विषय संबंधी इच्छाओं की पूर्ति करने के संकल्प रहते है, यह मन के दोष है। उसे आत्मविचार के द्वारा टाले। (का.३) चित्त का स्वभाव ऐसा चिपकु है कि भले-बुरे जिन पदार्थ का स्मरण करे उनमें चिपक जाता है। उसमें उत्तम कनिष्ठ भेद परखने की विवेक बुद्धि का अभाव होने से कभी तो बिल्कुल बेकार वस्तु या विषय में चिपक कर रात-दिन चिंतवन करते रहता है। (ग.म.६)

इस प्रकार मन सदैव अहंकार एवं इच्छाओं के साथ संलग्न रहता है, अतः उसकी सभी प्रवृत्तियाँ अहंकार तथा इच्छा प्रेरित ही होती है। परिणाम स्वरूप मन को अज्ञानता

का कारण भले ही न कहे, परंतु भूलों का प्रेरक अवश्य ही मान सकते है। सत्य से अलग रहने का मन का स्वभाव है। अतः कल्पित भ्रामक सत्य यानि, असत्य के संस्पर्श से मन प्रकृति विरुद्ध की प्रवृत्ति में प्रवृत्त हो कर जीवन में अधिकाधिक भूलों की परंपरा, असंवादिता, कुरूपता और विकृति लाता है।

मन की मर्यादा और दोष को गुणो में परिवर्तित कर प्रभु प्राप्ति के पुरुषार्थ में सुभग विनियोग करना हो तो आत्म विचार के साथ इंद्रियों को संयम में रखकर शब्द, स्पर्श, रूप, रस, और गंध इत्यादि पंचविषय की सर्व प्रवृत्तियाँ परमात्मा संबंधित ही करनी चाहिये। आँखों से परमात्मा का स्वरूप दर्शन, नाक द्वारा परमात्मा ने अंगीकार किये हुए पत्र-पुष्प तथा प्रसाद की सुगंध का सेवन, कान द्वारा भगवद लीला चरित्र तथा आध्यात्म ज्ञान श्रवण, जीभ द्वारा प्रभु के दिव्य प्रसाद का आस्वादन और नवधा भक्ति द्वारा प्रभु का पुनित संस्पर्श इस प्रकार चित्त को सर्व प्रकार से परमात्मा के स्वरूप में लीन रखने से, भ्रमर के ध्यान से कीटक भी भ्रमर हो जाती है, उसी प्रकार चित्त परमात्मा के स्वरूप में स्थिर होकर आत्मा को परमात्मा की प्राप्ति करवाती है।

लोया के दरबार सुरा खाचर भगवान स्वामिनारायण के अनन्य आश्रित थे। दरबार को भिन्न-भिन्न प्रकार के स्वादिष्ट पकवान खाने की रसासक्ति थी। परिणाम स्वरूप उनका भावुक भक्तहृदय सदैव भोजन परायण रहता था। भगवद् भक्तों के लिये मन की ऐसी क्रिया लांछन रूप है। अतः श्रीजीमहाराज़ ने उनको ऐसा नियम दिया कि भोजन

प्रसंग पर थाल में जो भी परोसा जाए उसे प्रभु प्रसाद समझ कर प्रेमपूर्वक ग्रहण कर लें। भले-बुरे, स्वाद-बेस्वाद की कोई फरियाद न करें। उनकी पत्नी को प्रभु ने आज्ञा दी कि आप दरबार को कभी स्वादिष्ट तो कभी बेस्वाद खा न सकें ऐसा भोजन परोंसे। प्रभु की आज्ञा होने से मन मसोस कर भी दरबार भोजन कर लेते। छः महिने में सुरा खाचर निर्स्वादी हो गये।

मन की सर्व मर्यादाओं को पार कर मन से परे जाने के सिवा आत्मानुभुति दुर्लभ है, इसके लिये सहजभाव-साक्षीभाव से आत्मा रूप से जीना यही एकमात्र उपाय है!

मुकाम ग्यारहवाँ
मन एवं विचार

मन के बारे में लंबी तात्त्विक चर्चा तो शायद हम कर लें, परंतु क्या वास्तव में मन को जानते है?क्या मन कभी मन के रूप में हमें प्रत्यक्ष होता है? इसके बारे में रमण महर्षि कहते है: 'हमारा या किसी का मन इंद्रिय प्रत्यक्षता का विषय नहीं है। एक अर्थ में यह अनुमान का विषय है, क्योंकि हम मन को उसकी प्रवृत्ति के द्वारा ही जानते है। यह प्रवृत्ति यानि मुख्यतः विचार। अगर सभी विचारों को निकाल कर मन को ढूंढने जाए तो मन जैसी कोई वस्तु दिखाई नहीं देती है। इस प्रकार विचार मन का अभिव्यक्त स्वरूप है। विचारों को अगर ज्ञेय स्थान पर रखा जाए तो उसका भी विचारक होना चाहिये। यह विचारक अहम् है। अहम् मूल विचारक हैं। जिसमें से मन रूप विचार उद्‌भवित होते है। सांख्य दर्शनानुसार उत्क्रांति के क्रम में महतत्त्व में से अहम् और अहम् में से ही मन का उद्‌भव का क्रम दर्शित किया है।

इन विचारों को आधार रूप माना हुआ मन, उसके मूल स्वरूप में चेतना या सभानता ही है। जब उस पर अहम् का वर्चस्व स्थापित होता है, तब तर्क बुद्धि, सोच तथा ज्ञानेन्द्रिय की शक्ति रूप से क्रियाशील बनती है। इस प्रकार अहम् से मन परिमित होता है। इससे पूर्व वह अपरिमित चेतना के साथ एकरूप होता है। इसीलिये रमण महर्षि कहते

है: 'मन आत्म स्वरूप में स्थित अजोड़ शक्ति है, क्योंकि वह सर्व वृत्तियों को पैदा करता है।'

अब अगर हम वैज्ञानिक दृष्टि से विचार करें तो, विचार वास्तव में क्या है? विचार चित्त में उत्पन्न होने वाले आंदोलन है। जब हमारे चित्त में स्मृति द्वारा योग्य क्षमता आती है, तब बाहरी वातावरण की उत्तेजना से चित्तमें विचार के आंदोलन आते है। ज्ञान, स्मृति, विशेषता एवं स्वभाव का प्रतिघोष ही विचार है। विचार से परे चेतना है, जो कुछ कर सकती है। विचार से परे उस चेतना के पास पहुँचने का सबसे सरल मार्ग है विचार का निरीक्षण करना, अविरत स्वस्मरण रखना, घटना जैसी होती है वैसे ही उसे स्वीकार करना। उसमें प्रतिक्रिया या पसंद-नापसंद रखनी नहीं है। इस प्रकार अविरत निरीक्षण करते-करते अचानक निरीक्षण से परे जा सकेंगे। एक सहज स्थिति का निर्माण होगा। जिसमें विचार की नहीं, अपितु चेतना की अनुभुति होगी। हमारी आसपास जो चेतना का सागर लहराता है।उसे वैज्ञानिक ईथर कहते है। हमारे विचारों की तरंग इस चेतना को आवरित कर एक स्वरूप खड़ा करती है। उसे विचार का स्वरूप अथवा विचार की मूर्ति कहते है।

कभी कोई अनचाही व्यक्ति की ओर धिक्कार का भाव या निंदा का भाव उद्‌भवित हो तब उसके विचार स्वरूप क्षणमात्र में उस व्यक्ति के पास पहुँच जाते है। वे विचारस्वरूप उस व्यक्ति के मन में भी हमारे लिये वैसे ही विचार उत्पन्न करता है। कभी अगर कोई व्यक्ति उच्च विचार या भाव के प्रभाव में हो तो हमारे धिक्कार के विचारस्वरूप

दुगनी गति से लौटकर हमारे मन पर आघात करते है। परिणाम स्वरूप हम निर्बलता का अनुभव करते है। इसीलिये हमारे वेद कहते है कि सभी का भला चाहे, कभी किसी का बुरा हो ऐसा संकल्प न करें। सभी का भला चाहने वाले का भला ही होता है। सर्वे सुखिनो सन्तु, सर्वे सन्तु निरामयाः। इस प्रार्थना में स्वकल्याण का गर्भित उद्देश्य ही छिपा है।

कई बार हम किसी को याद करते हो और वह आ पहुँचता है। हम उसको सहज ही कहते है, 'आपकी आयुष्य लंबी है,आपको याद करते थे और आप आ गये! हकीकत में उसके प्रबल विचारतंत्र एवं विचार स्वरूप ने ही हमें उसके विचार के लिये प्रेरित किया होता है। जिसकी चेतना जितनी जीवंत, उसके विचार स्वरूप भी उतने ही प्राणवान होते है और ऐसी व्यक्ति वास्तव में अधिक जीती है। विचारस्वरूप का संकल्पशक्ति का प्रभाव कैसा प्रबल एवं आश्चर्य कारक होता है इसका जीता जागता उदाहरण राजकोट में भूपेन्द्र रोड़ पर स्थित श्री स्वामिनारायण मंदिर में आज भी देख सकते है। आज से करीब दो सौ साल पहले इस स्थान पर एक कंटीली बैरी थी। मुंबई के गवर्नर लॉर्ड माल्कमसाहब को मिलने भगवान श्री स्वामिनारायण गढपुर से राजकोट पधारे तब उस पेड़ के नीचे संत मंडल की सभा कर बैठे थे राजकोट से विदा के समय संत शिरोमणि स. गु. गोपाळानंद स्वामी का उपवस्त्र बैरी के काँटे में फँस जाने से स्वामी हँसकर बोले: 'रे पगली, भगवान पुरुषोत्तमनारायण तेरे नीचे बिराजे तथापि तेरा कंटीला स्वभाव न गया?' उसके पश्चात आशचर्य कारक यह घटना घटित हुई कि उस बैरी के सारे काँटे जड़ गये!

आज भी वह बैरी राजकोट के स्वामिनारायण मंदिर के प्रांगण में खड़ी है।

हमारे विचार एवं वाणी कभी भी मरते नहीं है। वे सदैव अवकाश में स्थित चेतना (इथर) में अंकित रहते है। विचार कैसी प्रबल शक्ति है, ज्ञात होने के पश्चात इसका दुरुपयोग नहीं कर सकते है। विचार एक ऐसी छूरी है जिसके द्वारा हम सब्जी काटने जैसा रचनात्मक कार्य भी कर सकते है और खून करने जैसा निषेधात्मक कृत्य भी कर सकते है। विचारस्वरूपों की विशाल माया जाल हमारी ही बुनी हुई है। इसका कैसा उपयोग करें यह हमारे ही हाथ में है। इसीलिये एक कवि ने कहा है कि,

'जिंदगी है जाम, इसे छलका, है तेर हाथ में,
तोड़ना या तैरना, यह नाँव तेरे हाथ में।'

मुकाम बारहवाँ
मन का निग्रह

हमारा मन बंदर सदृश चंचल है। बंदर को अगर शराब पिलाई जाये तो उसकी मस्ती अनेक गुना बढ जाती है। उस पर अगर उसे बिच्छू काट ले तो उसकी चंचलता की कोई सीमा नहीं रहती है। हमारे मन मर्कट को इच्छा एवं तृष्णा रूप शराब पिलाते है। यह कम हो तो उस पर ईर्ष्या रूप बिच्छू का दंश देते है। चंचलता की पराकाष्ठा पर पहुँचे ऐसे पागल मन को बस में रखना- उसका निग्रह करना अत्यंत दुष्कर है।

श्रीमद् भगवद्गीता में अर्जुन श्रीकृष्ण भगवान को पुछते है: 'हे कृष्ण,मन चंचल, पीड़ाकारक, बलवान और हठीला है। अतः मन का निग्रह पवन को बस में करने जितना दुष्कर लगता है। (६/३४) अर्जुन का प्रश्न हम सभी का प्रश्न है। मनुष्य दिन-प्रतिदिन भौतिकवादी हो रहा है। नई-नई इच्छाओं की भरमार उसके मन को चंचलता की परिसीमा की ओर धकेलता है। ऐसे समय में श्रीकृष्ण का जवाब भी उतना ही लोकभोग्य है। श्रीकृष्ण कहते है; 'हे महाबाहो मन बेशक अति चंचल है तथा उसे बस में करना मुश्किल है, परंतु अभ्यास और वैराग्य द्वारा उसका निग्रह संभव है।' (६/३५)

श्रीकृष्ण का जवाब आशावादी है। मनोनिग्रह मुश्किल

है, परंतु असंभव नहीं है। नृसिंह भगवान ने स्तंभ में से प्रकट हो कर प्रह्लादजी की रक्षा की तब प्रहलादजी ने कहा: 'प्रभु, आपने इस देह की रक्षा की उसे मैं रक्षा मानता ही नहीं, क्योंकि इस देह का कभी न कभी तो नाश होगा ही। आपको मेरी आर्त प्रार्थना है कि आप मेरी काम, क्रोध, लोभ, मोह, मत्सर, ईर्ष्या इत्यादि अंतःशत्रुओ से रक्षा करें। यही मेरी वास्तविक रक्षा है।' प्रहलादजी की यह प्रार्थना प्रत्येक मुमुक्षु की सनातन प्रार्थना होनी चाहिये। हमारी प्रार्थना अगर अंतरात्मा की गहनता से उद्‌भवित हुई होगी तो प्रभु उसे अवश्य ही सुनेंगे। अंतःशत्रु जीतने से वैराग्य के वन में हमारा प्रवेश निश्चित रूप से हो जाता है।

भगवान श्री स्वामिनारायण ने वैराग्य की सूत्रात्मक व्याख्या देते हुए शिक्षापत्री में लिखा है: 'भगवान के बिना अन्य पदार्थ में प्रीति उसे वैराग्य कहते है।' जगत की अनित्यता का स्वाभाविक स्वीकार जब अंतःकरण से होता है, तब सर्व सुख की निधि परमात्मा के सिवा,सर्व विषयमें से अंतरात्मा शुष्क हो जाती है। हमारे शारीरिक, मानसिक, आर्थिक और सामाजिक संयोगो में होती जबरदस्त उथल-पुथल मन को कभी वैराग्य की ओर ले जाती है। वैराग्य एक ऐसी अग्नि है, जो मन को तप्त कर शुद्ध करती है। मन जितना शुद्ध होता है उतना उसे बस में करना आसान होता है। मन का संयम उसकी विशुद्धि पर निर्भर है। हमने पहले दृष्टिकृत किया कि मन अन्नमय है। अतः हमारे मन की शुद्धि का आधार हमारे आहार पर भी है। आहार का अर्थ यहाँ सिर्फ अन्न न लेकर इन्द्रियों के आहार के संदर्भ में विचारा

जाए तो यह निष्कर्ष निकलता है कि मनोनिग्रह का एक मूलभूत उपाय है कि राग द्वेष या मोह उत्पन्न करे ऐसा आहार इन्द्रियों को न दें। सात्त्विक आहार मनुष्य के राग द्वेष और मोह मंद करने में सहायक होते है।मनुष्य सत्त्वगुण द्वारा रजस और तमस उभय गुणों को बस में करना चाहिये। पश्चात सत्त्वगुण को भी शुद्धसत्त्वगुण द्वारा बस करना चाहिये। सत्त्व में से शुद्ध सत्त्व में तथा उसमें से गुणातीत स्थिति में मन को ले जाना चाहिये।

भगवान श्रीस्वामिनारायण वचनामृत (ग.प्र.३८) में कहते है: 'हमने तो यह माना है कि मन निर्वासनिक होना चाहिये। देह के द्वारा चाहे कितनी ही प्रवृत्ति हो, परंतु उसका मन अगर शुद्ध है तो उसका अति बुरा नहीं होता है..... भरतजी को अंत समय में मृग के बच्चे का स्मरण हुआ तो मृग के आकार से हो गये, पहले राज्य का त्याग किया था और ऋषभदेव भगवान उनके पिता थे तथापि ऐसा हुआ था। अतएव मन से निर्वासनिक रहें यह हमारा मत है..... गृहस्थ देह से व्यवहार करें और मन से त्यागी की सदृश ही निर्वासनिक रहें.... जनक जैसे राजा थे वे राज्य करते परंतु मन तो महान योगेश्वर जैसा था, अतः मन से किया हुआ त्याग ही योग्य है।'

श्रीकृष्ण भगवान श्रीमद् भागवत् में कहते है: 'जगत में जितनी आसक्ति है, सत्संग उनका नाश कर देता है। व्रत, यज्ञ, वेद, तीर्थ और यमनियम भी सत्संग जितने मन को बस में करने में समर्थ नहीं है।' सत्संग मनोनिग्रह सरल बनाता है। भगवान स्वामिनारायण भी वचनामृत में (का.१२) कहते है:

'कैसा भी कामी, क्रोधी, लोभी, लंपट जीव हो अगर ऐसी बात को प्रीति पुर्वक सुने तो उसके सर्व विकार टल जाते है। जिस प्रकार किसी के दाँतों में पहले इतनी ताकत रहती है कि कच्चे चने चबा जाए, वह अगर कच्चे आम अधिक खाये तो भात भी खाना मुश्किल हो जाता है। उसी प्रकार चाहे कितना ही कामादि में आसक्त पुरुष, इस प्रकार की बात को आस्तिक होकर श्रद्धा सहित सुनें तो वह पुरुष विषय सुख भोगने में समर्थ नहीं रहता है। तप्तकृच्छ-चांद्रायणादि व्रत के द्वारा अगर देह को सुका दे, तथापि ऐसी भगवद् वार्ता सुनने वाले का मन जितना निर्व्यसनी होता है, वैसा नहीं होता है। श्रद्धा सहित सत्शास्त्र का श्रवण-मनन मनोनिग्रह का अचूक साधन है।

योगशास्त्र आग्रह पूर्वक कहते है कि मनोनिग्रह के लिये मुमुक्षु को यम-नियम का अभ्यास करना चाहिये। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह इन सभी को यम कहते है। जिसे भगवान श्री स्वामिनारायण के अनुयायी सत्संगी पंचवर्त्तमान के नाम से जानते है। हरजी ठक्कर नामक एक सत्संगी ने एक बार भगवान श्रीस्वामिनारायण से प्रश्न पूछा: 'भगवन्, निष्काम वर्तमान(ब्रह्मचर्य) किस प्रकार अतिशय दृढ़ हो?' निष्काम व्रत दृढ़ करने के श्रीजीमहाराज़ ने तीन उपाय बताये। जिसमें सर्व प्रथम उपाय था मन को बसमें करना। मनको किस प्रकार बस में करे इसका उपाय बताते हुए श्री हरि ने कहा: 'मन में अविरत यह मनन करें कि मैं आत्मा हूँ, देह नहीं। दूसरा भगवान की कथा श्रवणादि जो नवधा भक्ति उसमें मन को अखंड संलग्न रखें। क्षणमात्र भी

मन को व्यर्थ न रहने दें। जिस प्रकार किसी पुरुष ने भूत को बस में किया था, उसे अगर काम न बताये तो खाने तैयार हो जाता था। उसी प्रकार यह मन भी भूत की सदृश है, उसे जब भगवद् भक्ति में न रखें तो अधर्म के विचार करता है, तब वह भूत की सदृश खाने को तैयार हुआ कहा जाए। अतः मन को सदैव भगवान की कथा-कीर्तनादि में संलग्न रखें। इसे मन बस में हुआ कहा जाए।' (ग.प्र.३३)

हमारा मन जब विक्षिप्त हो, तब हमारी साँस अधिक वेग से तथा अनियमित चलती है। मन को शांत करने का एक उपाय श्वासोच्छवास को नियमित करना है। प्राणायाम का अभ्यास मनोनिग्रह में अत्यंत सहायक होता है। परंतु जो ब्रह्मचर्य का पालन न करते हो तथा जिनका हृदय, फेफडे, और स्नायुतंत्र कमजोर हो उन्हें प्राणायाम का अभ्यास नहीं करना चाहिये।

परमात्मा का ध्यान ही मनोनिग्रह का सबसे असर कारक साधन है, परंतु उसमें भी विनियोग अत्यंत आवशयक है। इसके लिये भगवान श्रीस्वामिनारायण कहते है: 'जब मन में सत्त्व गुण हो उस समय भगवान की मूर्ति का ध्यान करना चाहिये, तमोगुण हो तब कोई विचार न हो तथा शून्य सदृश रहे, उस समय भगवान का ध्यान न करें एवं जब रजोगुण हो उस समय संकल्प-विचार अधिक हो उस समय भी भगवान का ध्यान न करें। (ग.प्र.३२)

एक बार परम पूज्य गुरुवर्य अ.मु. नारायणभाई के पास एक वृद्ध मुमुक्षु आकर पूछने लगे: 'भाई, मुझे ध्यान करना है, परंतु मन ध्यान में लगता नहीं है। आप कुछ उपाय

बतायें।' गुरुवर्य ने मंद स्मित के साथ कहा: 'भगवान का अखंड अनुसंधान करने की कोशिश करें। उठते-बैठते, खाते-पीते, श्रीहरि का नाम स्मरण करते रहे, यह भी ध्यान ही है!' मन को बस में करने का इससे सरल और अचूक उपाय शायद ही कोई हो। जप यानि नामस्मरण दीर्घ काल पर्यंत किया जाए तो मन उसके निर्मल सहज स्वरूप में आकर पूर्व की सर्व वृत्तिओं तथा वासना को फेंक देता है!

मुकाम तेरहवाँ
मन एवं मस्तिष्क

एक बार कारण सत्संग की सभा में कुछ मित्र आध्यात्मिक चर्चा कर रहे थे। उस समय एक मित्र ने सवाल किया: 'अगर शरीर की उत्पत्ति का मूल मन है तो एक प्रश्न होता है कि गर्भावस्था में जिस क्रम में गर्भ का विकास होता है उसके अनुसार यह ज्ञात होता है कि दिमाग का विकास तो सातवें-आठवें महिने में होता है, अर्थात् अंतिम क्रम में होता है। ऐसा क्यों?' यह प्रश्न कई लोगों को होता है, क्योंकि इस प्रश्न के मूल में यह मान्यता है कि मन ही दिमाग है! हकीकत में मन (Mind) और(Brain) दिमाग दोनों अलग है। स्थूल व्यवहार के लिये दिमाग मन का उपकरण है - साधन है, इससे अधिक कुछ नहीं। शरीर की मृत्यु होते ही दिमाग का अस्तित्व समाप्त हो जाता है, परंतु मन तो सक्रिय रहता है।

मन की तुलना में दिमाग बहुत ही धीमा साधन है। मन स्थूल भूमिका पर आकृतियाँ भेजता है उन आकृतियों के अनुसार काम करने की दिमाग को सूचना देता है। मन चित्र या छाया उभारता है और दिमाग उसके अनुसार कार्य करता है। ये छायाएँ (Images) मन के स्मृति भंडार में से आई रहती है। मन के स्मृति भंडार में अनंत जन्मों के संस्कार संग्रहित होते है। जबकि स्थूल दिमाग के केन्द्र में भी इस

जन्म की स्मृति रक्षित रहती है। ऐसा कहा जाता है कि मृत्यु के समय दिमाग में संग्रहित सारे जीवन की स्मृति के आधार पर मरने वाली व्यक्ति अपने बीते हुए जीवन की सारी घटनाएँ एक फिल्म की तरह तादृश्य देखती है। इस फिल्म का उपादान दिमाग है। एक पल में दिमाग जीवन में जो कुछ हुआ है वह सभी कुछ मरने वाले की समक्ष प्रकट कर देता है। पश्चात दिमाग का तो नाश हो जाता है, परंतु मृत्यु से पूर्व वह स्मृति अंतरमन के आकाश में अंकित हो जाती है। जीव जब तक स्थूल देह में रहता है मन की, तब तक मन की स्मृति धूमिल रहती है। क्योंकि उस समय इन्द्रियाँ अवितर रूप से क्रियाशील होने से सारा समय दिमाग पर स्वयं की प्रतिक्रिया द्वारा प्रतिकृतियाँ उभारती ही रहती है। मृत्यु के बाद दिमाग का नाश होने से मन अति सक्रिय हो जाने से उसके भीतर छिपी अनंत जन्मों की स्मृतियों को ताजा कर देती है।

आधुनिक मेडिकल जानकारी के अनुसार मानवी दिमाग की उपरी सतह में दस लाख विविध ज्ञानतंतुओं के बीच सूचनाओं का आदान-प्रदान के आधार पर मानवी अद्‌भूत कार्य कर सकता है। इस कार्य में नाक पर बैठी मक्खी उड़ाने की सामान्य बात से लेकर सुपर कम्प्युटर बनाने की जटिल क्रिया तक समाविष्ट होती है। हमारा दिमाग भी एक अद्‌भूत कम्प्युटर से कुछ कम नहीं है। प्रकृति द्वारा बनाये गये इस बेमिसाल यंत्र की जगत में कोई तुलना नहीं है। इस यंत्र की आंतरिक जाल की अटपटी बुनाई में बीस लाख साल पुरानी जैविक उत्क्रांति की सुक्ष्मता युक्त जानकारी

संग्रहित है। इतना ही नहीं, उसमें ५०००० वर्ष पुरानी संस्कृति के उत्थान के बीज भी सँभाले हुए है। प्रत्येक मनुष्य के दिमाग में जीवन के दौरान होने वाली व्यक्तिगत उत्क्रांति का नक्शा तैयार रहता है।

दिमाग अर्धघन (Semi-solid) नरम पदार्थ का बना हुआ एक अंग है। जिसका वजन करीब १३०० ग्राम है। दिमाग की गहनता में हिप्पोकेम्पस नामक दूज के चाँद के सदृश एक क्षेत्र छिपा हुआ है। यहाँ कुछ विशिष्ट चेताकोष (Neurons) ईकट्ठे हुए है। इन कोषों द्वारा स्मृति संकलन जैसी प्रक्रिया होती है। बादाम जैसे आकार के एमिगडाला के भीतर विशिष्ट चेताकोष का एक जत्था है जो भय के भाव को संचित करता है। दिमाग का बेइझल गेंगलिया नामक मटमैले रंग का पदार्थ हमारी विविध आदत एवं शारीरिक खूबियों को याद रखने में सहायक होता है। हमारे दैनिक जीवन की अलग-अलग परिस्थिति में विविध भाव प्रदर्शित करते है, कभी संयोगोनुसार क्षणमात्र में अनेक बातों का पृथक्करण कर देते है। ये सारे चमत्कार कुदरत के अजीब करिश्मा जैसा यह दिमाग करता है। मनुष्य द्वारा बनाई गई न्युरल सिलिकोन चिप्स कभी भी ऐसे करिश्मे कर सकेगी?

आधुनिक वैज्ञानिको ने यह खोजा है कि मनुष्य का आइ-क्यु अर्थात् बुद्धिअंक जितना ऊँचा, उसके दिमाग में उतनी कम प्रवृत्ति होती है। मस्तिष्क विज्ञान में Intelligence (मेघा) को न्युरल एफिश्यन्सी (ज्ञानतंतुओं की उच्च क्षमता) गिनी जाती है। स्मार्ट दिमाग बेकार की मज़दूरी नहीं करता है। वह कम शक्ति का उपयोग कर अधिक अच्छा कार्य

करता है। इस प्रकार देखें तो बुद्धि ज़हेमत से अधिक कौशल्य का परिणाम है। अब तो M.R.I. और P.T.I स्केन की मदद से वैज्ञानिक मोनिटर स्क्रिन पर दिमाग की क्रियाओं को देख सकते है। डेल गाडो नामक एक वैज्ञानिक ने एक अनोखा प्रयोग किया। उसने एक जबरदस्त खूँखार स्पेनिश बैल के दिमाग में इलॅक्ट्रोड्झ लगा कर मैदान में भेजा। यह बैल आक्रमक था। मैदान में खड़े लोगों को मारने उनकी ओर बढ़ रहा था, परंतु वैज्ञानिको ने वीज संवेदनो के द्वारा उसके दिमाग में स्थित आक्रमक केन्द्र को बंद कर देने से वह अचानक रुक गया और भीगी बिल्ली की तरह खड़ा रहा। उसके एमिगडाला क्षेत्र में रेडियो तरंग पहुँचते ही वह शांत हो गया था। आधुनिक विज्ञान ने यह साबित कर दिया है कि खूँखार आतंकवादी को अब जेल की सलाखों के पीछे बंद रखने की आवश्यकता नहीं है। उनको पेरोल पर छोड़ते समय उनके दिमाग के साथ रेडियो ट्रान्समीटर्स जोड़ दिये जाये जो उनके दिमाग की सभी क्रियाओं का जीवंत प्रसारण करती रहे, पुलीस कंट्रोलरुम से उसकी विशिष्ट मानसिक परिस्थिति का अवलोकन करती रहे। जैसे ही उसके दिमाग में असामाजिक विचार की आहट हो तुरंत ही दूर संवेदको की मदद से उनको दवा दिया जाए। इस प्रकार गुन्हा तो कम होंगे, परंतु क्या यह नहीं लगता कि वैज्ञानिक इस प्रकार दिमाग के साथ वर्तन कर उसकी रहस्यमयता और सर्वोपरिता को ललकार रहे है?

इस दुनिया में सबसे मूर्ख मनुष्य इतने अधिक प्रश्न पूछता है कि सबसे सयाना व्यक्ति भी उसके सवालों का

जवाब नहीं दे सकता है। स्वाभाविक है कि हमारा दिमाग और मन इतना कुशल नहीं है कि वह स्वयं की सक्षमता को पूर्णतः समझा सके!

मुकाम चौदहवाँ
मन एवं स्वास्थ्य

स्वास्थ्य शब्द का सामान्य अर्थ यह होता है कि स्व यानि आत्मा में स्थित होना अर्थात् आत्मारूप से निज स्वस्वरूप के अस्तित्व का आनंद लेना। आत्मा परमात्मा का अंश होने से रोग, मोह, दैत्य, लोभ, कोप, ताप आदि विकारों से मुक्त है- निर्लेप है। अतः जब मन आत्मा परमात्मा में स्थित होता है तब वह शारीरिक निर्बलता और व्याधि विकारों से मुक्त होकर आनंदमय उच्च अवस्था को प्राप्त करता है, जिसे स्वास्थ्य कहते है।

स्वास्थ्य ही वास्तविक संपत्ति है एवं स्वास्थ्य ही परम सुख है। स्वास्थ्य के बिना सौंदर्य अल्पकालीन और निर्रथक है। सर्वांग संपूर्ण स्वास्थ्य ही मानव जीवन की स्वाभाविक और सहज अवस्था है। 'धम्मपद' नामक बौद्धधर्म के विख्यात ग्रंथ में भगवान बुद्ध ने भी स्वास्थ्य को ही 'परम लाभ' कहकर आरोग्य परमा लाभाः। वचन उच्चारे है। आयुर्वेद में लिखा है: 'धर्मार्थकामामोक्षाणामारोगाग्यं मूलमुत्तमम्। अर्थात् धर्म, अर्थ, काम, और मोक्ष चतुर्विध पुरुषार्थ को प्राप्त करने का सर्वश्रेष्ठ एवं मुख्य साधन स्वास्थ्य ही है। तंदुरस्ती मनुष्य मात्र का जन्म सिद्ध अधिकार है।स्वास्थ्य की उपेक्षा तो वास्तव में तो स्वयं के अस्तित्व की ही उपेक्षा है – जीवन सार्थकता की उपेक्षा है।

'महाभारत में एक श्लोक है:

सत्त्वम् रजस्तम इति मानसाः,स्युः त्रयो गुणाः।
तेषां गुणानां साम्यं यत् तदाहुः स्वास्थ्यलक्षणम्।।

सत्त्व, रजस और तमस ये तीनों मन के गुण है। इन गुणों की साम्यवस्था को ही स्वास्थ्य कहते है। इस प्रकार वास्तविक स्वास्थ्य शरीर एवं मन दोनों के साम्य पर अवलंबित है। जब यह साम्य बिगड़ता है, तब प्रकृति ने शरीर को प्रदान की हुई नैसर्गिक प्रतिकारक शक्ति क्षीण होने लगती है और शरीर रोगों का घर बनता है। योग्य आहार-विहार, सात्विक विचार-सदाचार, सत्य, प्रेम जैसी निस्वार्थ भावना तथा कामक्रोधादि रजोगुणी दोष से मन को मलिन होने से बचाना - इन सब के सिवा नैसर्गिक स्वास्थ्य संभव ही नहीं है। आज हम मन की उपेक्षा कर शरीर को जिम्नेशियम में केवल शारीरिक कसरत द्वारा स्वस्थ रखने का निर्रथक प्रयास करते है। इसके मूल में स्वास्थ्य के बारे में वास्तविक समझ का अभाव है।

विलियम हार्वे नामक तबीब ने ३०० वर्ष पहले कहा था कि हृदय (Heart) का मन के साथ सीधा संबंध है। सुख-दुःख, पीड़ा-शांति, आशा या भय इन सभी की सीधी असर हृदय पर होती है। उग्र स्वभाव के, अति महत्वकांक्षी, जल्दबाज़ी और किसी भी प्रकार से कार्य को पूरा करने वाले चिड़चिड़े स्वभाव के लोग हृदय रोग के भोग जल्द ही होते है। जिसे जीवन में स्वास्थ्य और शांति चाहिये उसे अंग्रजी का एक सूत्र याद करने जैसा है: If you want to take rest, forget the rest.फिकर को फाँक लो। एलेक्सील केरल कहते

है: 'बड़ी बात आपके जीवन में बरसों को जोड़ना नहीं, अपितु बरसों में जीवन जोड़ना है।' खिंचते हुए बरस बीताने में जीवन की सार्थकता नहीं है, परंतु जीवन के अंतिम पल तक पल-पल को जीवन को जीने से ही जीवन सार्थक होता है।

डॉ. फ्रीडमेन और डॉ.रॉझेन स्वयं के संशोधन के अंत में कहते है: 'मनुष्य का निर्बल स्वभाव, अविरत टेन्शन, गैरजिम्मेदार रहन-सहन, अविरत धूम्रपान तथा शराब का सेवन ये सभी बातें हृदयरोग और डायाबिटिस जैसे दर्द के लिये जिम्मेदार है। इससे उलटा आनंदी स्वभाव वाले संतोषी एवं निर्व्यसनी लोगों को ऐसे राजरोग नहीं होते है।' हार्वर्ड मेडिकल समूह के प्रोफेसर डॉ.हर्बर्ट बेन्सन .स्वयं के 'The relaxation response & the mind body effect' पुस्तक में लिखते है: 'मानसिक तनाव और खिंचाव मानवी के महत्व के अंगो पर बहुत खराब असर करते है। जीवन के विपरित संयोग में भी अगर भय और टेन्शन के स्थान पर हिंमत, आशा और धीरज जैसे सकारात्मक अभिगम अपनाया जाए तो स्वास्थ्य के बारे में कई अच्छे परिणाम देखे जा सकते है।

केवल हृदयरोग के लिये ही नहीं, किसी भी गंभीर दर्द के लिये मानसिक शक्ति अति महत्व की है। एलोपेथी में अब तक जंतुओं (Germs) द्वारा ही अधिकत्तम रोग होते है, यह माना जाता था, परंतु अब रोग होने में तथा स्वस्थ होने में मानसिक कारण को ही महत्वपूर्ण गिना जाता है। युनिवर्सिटी ऑफ रोचेस्टर की मेडिकल कॉलेज के प्रोफेसर डॉ.लग्नार्ड फोक्स 'सायकॉन्युरो इम्युनोलोजी' पुस्तक में लिखते

है: 'किसी व्यक्ति को केन्सर हो या रुमेटोइड आर्थराइटिस हो तब उस रोग के मूल में दर्दी का मानसिक अभिगम ही जिम्मेदार होता है। मनुष्य की रोग प्रतिकारक शक्ति उसकी मानसिक शक्ति के अनुसार होती है। मन को एकाग्र करने से शरीर और दिमाग में उल्लेखनीय बायोकेमिकल परिवर्तन होते है। जो शरीर की प्रतिकारक शक्ति को बेहिसाब बढ़ा देते है।'

अलग-अलग रोग के नाम हमने ही रखें है। हकीकत में कुछ रोग या कुछ तकलीफ ऐसे वर्गीकरण की कोई आवश्यकता है ही नहीं। जब शरीर और मन की संवादिता (Harmony)गड़बड़ा जाती है, तब ही तकलीफ या रोग की शुरुआत होती है। अतिशय टेन्शन पेट के अल्सर को आमंत्रण देता है। विचारों में विरोधाभास चमड़ी के रोग के लिये जिम्मेदार है। मन का नकारात्मक अभिगम लॉ बी.पी. से लेकर ह्रदय रोग तक के रोग के लिये जिम्मेदार है। गेलन जैसे एलोपेथी के पितामह ने कहा है कि स्त्रियों के स्तन केन्सर का कारण उनका गमगीन स्वभाव है। हाँलाकि पुरुषों की अपेक्षा स्त्री अधिक आयुष्यमान होती है क्योंकि स्त्रियों के हॉर्मोन्स एस्ट्रोजन तत्त्वों से भरपूर होने से वे पुरुषों की अपेक्षा मानसिक रुप से अधिक सक्षम होती है।

पश्चिम के डॉक्टर भी अब हमारे आयुर्वेद में जो मूलभूत बातें लिखी है, उनको परोक्ष रुप से मानने लगे है। आयुर्वेद स्वास्थ के लिये मूलतः दो तत्त्वों को मुख्य मानता है। जिसमें प्रथम जठराग्नि है। जठराग्नि यानि भगवान वैश्वानर स्वरुप परमात्मा तत्त्व, गीता में श्रीकृष्ण भगवान ने प्राणीमात्र

में वैश्वानर अग्नि रूप से स्वयं विद्यमान है, यह कहा है। इस अग्नि का जो जतन कर सके- उसे मंद न होने दे वही स्वास्थ का जतन कर सकता है! शरीर का दूसरा भाग्य विधाता वायु है। वायु तंत्रयंत्रधरः। वायु ही जीवन है – जीवनाधार है – प्राण है। आयुर्वेद के अनुसार मन वायु है और वायु मन है। हमारी सभी मानसिक क्रियाओं को करने वाला वायु ही है। जठराग्नि और वायु ये दोनों ही शरीर की नियामक शक्ति है। अतः हमारे स्वास्थ्य का आधार इन दो तत्त्व पर ही है।

आयुर्वेद के महान आचार्य वाग्भट 'अष्टांग ह्रदय' में लिखते है: 'जिसके शरीर की चेष्टा, वाणी और मन गाय जैसी सरलता का अनुसरण करते है तथा जो जैसा बोले या सोचे वैसा ही करता है ऐसे गुणवान मनुष्यों के आयुष्य, इंद्रिय, और शील स्थिर होते है।' आयुर्वेद के मतानुसार मन और इंद्रियों में विकृति न हो तथा वे स्वयं के स्वाभाविक स्वरूप में रहे, अतएव बुद्धिमान व्यक्ति को सदैव संयोग का पालन कर अतियोग, आयोग, मिथ्यायोग का त्याग कर देश, काल, एवं निज प्रकृति से विपरित वस्तु का सेवन न करना चाहिये। उदाहरण स्वरूप वात प्रकृति वाले मनुष्य को गरम प्रदेश में हटाने से या गरम (अधिक तापमान वाले) वातावरण में रखकर वातल आहार-विहार से बचाना चाहिये। मनुष्य को स्वयं की प्रकृति के अनुसार दिनचर्या, ऋतुचर्या तथा रात्रिचर्या का आयोजन कर स्वयं को हितकर-अहितकर आहार का योग्य विचार कर स्वयं के मन और इंद्रिय को स्वस्थ अवस्था में रखना चाहिये।

जो मनुष्य स्वास्थ्य प्राप्त कर सकता है, वही मनुष्य मनोनिग्रह कर ध्यान द्वारा परमात्मा की असीम कृपा का अधिकारी होता है।

मुकाम पंद्रहवाँ
चिंता छोड़ो स्वस्थ रहो

हमने कभी यह सोचा है कि हमें छींके क्यों आती है? अचानक हिचकी क्यों आती है?कभी-कभी सुबह-सुबह में जम्हाई क्यों लेते है? अगर गहराई से सोचा जाए तो कोई अनचाही भावना या चिंता ऐसी चेष्टाओं के मूल में हलचल मचाती है। ऐसी चेष्टाएँ दिखती शारीरिक है, परंतु होती है मनोवैज्ञानिक! हमारा शरीर हमारे मन के प्रति इतना संवेदनशील है कि हमारे प्रत्येक विचार, भावना, चिंता और तनाव की सीधी असर शरीर पर होती है।

केनेड़ा के नॉबल पारितेषिक विजेता डॉ. हन्स सेल्ये ने मानसिक तनाव की शरीर के भिन्न- भिन्न अंगो पर क्या असर होती है इसका तलस्पर्शी संशोधन किया है। हमारे दिमाग के चेतातंत्र में अनुकंपी (Sympathetic) एवं परानुकंपी (Parasympathetic) ये दो प्रकार के ज्ञानतंतु है जो मानसिक तनाव की स्थिति में महत्वपूर्ण हिस्सा लेते है। सामान्यतः परानुकंपी ज्ञानतंतु हमारे शरीर के आंतरिक अवयव के कार्य का नियंत्रण करते है, परंतु जब टेन्शन होता है तब अनुकंपी ज्ञानतंतु सक्रिय होकर एड्रेनालिन नामक रासायनिक द्रव्य छोड़ते है। एड्रेनालिन भय एवं संकट के समक्ष शरीर को टिकने की क्षमता देते है। इसी घटना को विस्तार पूर्वक समझें।

जब हमारे जीवन में शारीरिक या मानसिक स्तर पर कोई संकट आता है, तब हमारे मन में भय एवं चिंता की भावना पैदा होती है। हाँलाकि हर व्यक्ति में संकट का सामना करने की क्षमता अलग-अलग होती है। अत्यंत भावनाशील तथा नरम दिल के लोग छोटी सी तकलीफ में भी भयभीत हो जाते है, जब कि कुछ मोटी चमड़ी के ढीट लोग आसमान गिरने जैसे संयोग में भी दृढ़ता से खड़े रहते है। इस बारे में जीवन के प्रति आपका दृष्टि बिंदु और अभिगम ही अभिनित होता है। तकलीफ छोटी हो या बड़ी, परंतु वह जब आपके मन को विचलित करे तब उसके प्रत्याघात हमारे शरीर पर कैसे और किस प्रकार होते है, उसे अब शरीर विज्ञान की भाषा में देखें।

चिंता एवं उद्विग्नता के कारण दिमाग का सेरेब्रल कोर्टेक्ष नामक भाग विशिष्ट प्रकार की उत्तेजना का अनुभव कर अन्य महत्वपूर्ण हिस्से हाईपोथेलेमस को यह संदेश भेजता है। हाईपोथेलेमस इस SOSको पिच्युटरी ग्रंथि को भेजता है। परिणाम स्वरूप ACTH (Adrenocortycotrophic hormone) नामक होर्मोन का स्त्राव होता है। पिच्युटरी की तरह दूसरी महत्वपूर्ण ग्रंथि है एड्रेनल। पेट के खोखले हिस्से में दोनों मूत्रपिंड के उपर एक-एक एड्रेनल ग्रंथि है। पिच्युटरी का ACTH एड्रेनल्स के कार्टेक्ष पर असर करने से उनमें से मेडुला एड्रेनालिन और नोरएड्रेनालिन नामक होर्मोन्स रक्त प्रवाह में छूटते है। इन होर्मोन्स के कारण शक्ति की खान सदृश लीवर में से ग्लुकोझ मुक्त होता है। उससे रक्तवाहिनी फैलती है और रक्तचाप बढ़ता है। परिणाम स्वरूप स्नायु

तथा आंतरिक अवयव को रक्त का पर्याप्त जत्था त्वरित गति से प्राप्त होता है। इन संयोग में रक्त का जमने का गुण भी प्रबल बनता है। अतएव अकस्मात के समय में अगर शरीर को हानि हो तो दिमाग के उपर्युक्त प्रोग्रामिंग के द्वारा रक्त तत्काल जम कर शरीर की रक्षा करता है। हमारा मन अगर बार-बार हताशा, निराशा या चिंता के भवँर में उलझता हो तो दिमाग की अविरत उत्तेजना एड्रेनालिन का अधिक स्त्राव रक्त प्रवाह में करती है। जिसके कारण हृदय की धड़कन बढ़ना तथा उच्च रक्तचाप की तकलीफ शुरु होती है। जब एड्रेनालिन की मात्रा रक्त में बढ़ती है, जब हमारा जठर उसकी पाचनक्रिया का कार्य बंद कर देता है। अतः चिंतातुर व्यक्ति जब कुछ खाता है, खुराक बिना पचे ही पेट में पड़ी रहती है। अंततः कच्चा रस रक्त में मिश्रित होकर जोड़ों के दर्द का कारण बनता है। पाचन क्रिया की कार्यवाही बंद होने से यकृत में स्त्रवित पाचक उत्तेजकों की (Digestive enzymes) तीव्रता के कारण उसकी दिवार में छेद (Ulsers) हो जाते है। इन सारी परिस्थितियों में सर्वाधिक धक्का (Strain) हृदय को लगता है, अतः अगर हृदय को सलामत रखना हो तो हताशा को निकाल दो - मन को शांत रखो और नियमित ध्यान करो। दिमाग के अंदर पिच्युटरी के पास पीनीअल नामक ग्रंथी में से मेलोटोनीन नामक अति लाभदायी हॉर्मोन स्त्रवित होता है। जिससे शरीर के सभी अंगो की कार्य दक्षता में वृद्धि होती है। मेलोटोनीन हृदय रोग के हमले भी अटकाता है। स्टेनफर्ड युनिवर्सिटी के डॉक्टर फिलिप गोल्डीन खुद के दर्दी को सोशियल एन्झाइटी

डिसऑर्डर (SAD) मुक्ती पाने के लिये नियमित ध्यान करवाते है। कपाल के पास बाँई ओर दिमाग का 'लेफ्ट प्रिफन्टल कोर्टेक्ष' हिस्सा है। जहाँ मनुष्य को सुख शांति का अनुभव होता है। नियमित ध्यान करने वाले के दिमाग में यह विभाग अधिक चमकता है। आज तो अनेक रोगों में ध्यान दवाई की अपेक्षा अधिक असरकारक सिद्ध हुआ है। ध्यान ही हमें जीवन जीने की कला सिखाता है। इसके लिये आवश्यकता है सिर्फ मानसिक अभिगम की (Mental attitude), क्योंकि हमारा मानसिक अभिगम ही हमें पूर्णतः मौलिक तरीके से सोचने की शक्ति प्रदान करता है!

यह भी एक हकीकत है कि चिंतातुर व्यक्ति को सीधे ही ध्यान करने की सलाह देना अव्यवहारिक है। ध्यान करने के लिये एक पूर्व भूमिका आवश्यक है। मन को चिंता, हताशा, गमगीनी जैसे नकारात्मक आयाम में से उत्साह, आनंद और प्रेम जैसे सकारात्मक आयाम में सरलता से ले जाने के लिये, अगर कोई सहजत्तम व्यायाम है तो वह है हास्य! स्टेनफोर्ड युनिवर्सिटी के डॉ. विलियम फ्राय कहते है: 'हास्य खड़े-खड़े दौड़ने का व्यायाम है। अन्य व्यायाम की तरह हास्य के व्यायाम की स्थायी असर रहती है। हास्य से ब्लडप्रेशर नॉर्मल होता है, पुराना सर दर्द ठीक हो सकता है।' धी सायन्सीझ मानक मेगेझीन में डॉ.जेफ्री गोल्डस्टेन ने लिखा है: 'हास्य से मनुष्य की आयु बढ़ती है। हास्य से बेटा ॲन्डोरफिन्स नामक कुदरती सत्त्व दिमाग में स्त्रवित होता है। जिससे हमें पीड़ाशामन स्थिति का अनुभव होता है। परिणाम स्वरूप हास्य द्वारा मानसिक तनाव कम होता है।' हमारे

दाहिने दिमाग में हास्य का केन्द्र स्थित है। दिमाग के दाहिने हिस्से को हास्य द्वारा उत्तेजित किया जाए तो दिमाग में कई लाभदायी रसायण पैदा होते है। जिससे हृदय अधिकांश रोग ठीक होते है। शरीर ध्यान की पूर्व भूमिका रूप स्वस्थता पाकर ध्यान के लिये सुसज्ज होता है।

मुकाम सोलहवाँ
मन का ऊर्ध्वीकरण

शास्त्रों में कहा है कि पृथ्वी, जल,तेज, वायु, आकाश, अहंकार और महतत्त्व इन सप्त आवरण को जो भेद सकता है वही ब्रह्मरूप होकर परमात्मा की कृपा का पात्र बनता है, इन सप्त आवरणों को कैसे भेदा जाए? इस प्रश्न का यथार्थ उत्तर समझने के लिये दीर्घ पूर्व भूमिका बनानी पड़ती है।

हमारा शरीर अखिल ब्रह्मांड की छोटी आवृत्ति की तरह है। अतएव कहा गया है कि या पिंडे सा ब्रह्मांडे। भगवान श्री स्वामिनारायण वचनामृत में कहते है: 'इस ब्रह्मांड में जैसा कारखाना है वैसा ही इस पिंड में भी है . पिंड में अल्प है और ब्रह्मांड में महत्त है। जैसा इस पिंड का आकार है वैसा ही ब्रह्मांड का भी आकार है। जिस प्रकार ब्रह्मांड में नदियाँ है उसी प्रकार पिंड में नाड़ियाँ है। जिस प्रकार ब्रह्मांड में सागर है उसी प्रकार पिंड में कुक्षि में जल है। जिस प्रकार चंद्र-सूर्य है उसी प्रकार पिंड में इड़ा-पिंगळा नाड़ी में चंद्र-सूर्य है, इत्यादि सामग्री जिस प्रकार ब्रह्मांड में है उसी प्रकार पिंड में है तथा इंद्रियों की नाड़ियाँ है उनकी ब्रह्मांड के साथ एकता है।' (ग.प्र.६५) जिस प्रकार चौदह लोक का ब्रह्मांड सप्त आवरण से घिरा हुआ है, उसी प्रकार हमारी आत्मा भी अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनंदमय कोष जैसे पंच आवरण से आवृत है। ये आवरण या कोष आत्मा

नहीं है। उस पर आच्छादन है। जीव अज्ञानवश इन आवरणों को ही आत्मा मानकर उसके अनुसार वर्त्तन करता है।

अन्नमय कोष यानि हमारा स्थूल शरीर। उसका आधार अन्न है। अतएव अन्नमय कोष कहते है। स्थूल शरीर के जैसे ही आकार का प्राणमय शरीर है। जिसे अंग्रेजी में Etheric double अथवा Aura कहते है। रशिया के डॉ. किरलियन ने हमारे ऑरा यानि आभामंडल के फोटो खिंचने की तकनिक का विकास किया है। डॉ.किरलियन ने प्राणमय कोष को देखने के लिये ऑरोस्पॅक नामक चश्मे बनाये है। इन चश्मों को पहन कर हम किसी भी व्यक्ति के प्राण शरीर के ऑरा को स्पष्ट रूप से देख सकते है। प्राणमय कोष हमारी इंद्रियों का आधार है, जिस व्यक्ति की चेतना प्राणशरीर में रहती हो उसे इंद्रियो के विषय में विशेष अभिरुचि रहती है। प्राणमय कोष से सूक्ष्म मनोमय कोष है। जिसका मुख्य अंग मन है। मनोमय कोष में जीने वाले व्यक्ति को स्थूल भोगों की अपेक्षा मानस भोग अधिक प्रिय लगते है। मनोमय से सूक्ष्मत्तर विज्ञानमय कोष में श्रद्धा, सत्य और एकाग्रता जैसे सत्त्वगुण का प्राधान्य होता है। मनोमय एवं विज्ञानमय संलग्न होकर अंतःकरण बनाते है। पाँचवा आवरण आनंदमय कोष शुद्ध सत्त्व की आत्मा की सर्वाधिक निकट की अवस्था है।

ब्रह्मांड की एक शक्ति सूर्य है तो दूसरी चंद्र है। मानव शरीर में भी सूर्य और चंद्र –पिंगळा और इड़ा नाड़ी द्वारा श्वासोच्छवास लेते है। हमारा योग विज्ञान कहता है कि दिमाग में से मुख्य तीन नाड़ियाँ निकलती है। इडा, पिंगळा

और सुषुम्णा। तबीबी विज्ञान भाषा में बायें अनुकंपी ज्ञानतंतु (Left sympatheic nerves) इड़ा, दाहिने अनुकंपी ज्ञानतंतु (Right sympathetic nerves) पिंगळा और परानुकंपी (Para sympathetic nerves) ज्ञानतंतु सुषुम्णा नाड़ी से संबंधित है। ये नाड़ियां मस्तिष्क में से नीचे उतरती है तब एकदूसरे के साथ चोटी की तरह बुनकर उतरती है। करोड़रज्जु में इसकी बुनाई सात जगह पर होती है। जिस जगह पर बुनाई होती है उस जगह पर गंठन जैसा होता है। इस गंठन के साथ हमारे सूक्ष्म शरीर में स्थित सात चक्र यानि शक्ति केंद्र संबंधित है। इन चेतना केन्द्रो द्वारा प्राणशक्ति सूक्ष्मशरीर में से स्थूल शरीर में आना-जाना करती है। इन चक्रों के नाम है (१) मूलाधार चक्र, (२) स्वाधिनास्थ चक्र, (३) मणिपुर चक्र, (४) अनाहत चक्र, (५) विशुद्ध चक्र, (६) आज्ञा चक्र और (७) सस्त्रार चक्र। सूक्ष्म शरीर में जहाँ-जहाँ ये चक्र स्थित है वहाँ-वहाँ मूल शरीर में अंतःस्त्रावी ग्रंथी है।

मूलाधार चक्र का स्थान सीव के पास गुदा के पास है। उसके पास काम के केन्द्र है। मूलाधार में पृथ्वी तत्त्व का प्रभुत्व है। मूलाधार से उपर उदर के भाग में स्वाधिष्ठान चक्र जलतत्व प्रधान है। नाभि के पास मणिपुर चक्र में अग्नितत्त्व समाया हुआ है। उसमें गति अवरोध होने से शरीर में अग्नि तत्त्व बढ़ जाने से अतिसार तथा दाह की तकलीफ होती है। चौथा अनाहत चक्र छाती में हृदय के पास है। उसमें वायु तत्त्व का प्राधान्य है। अनाहत चक्र जिसमें निष्क्रिय हो वह मनुष्य क्रूर और निर्दय होता है। आखिरकार वह डिप्रेशन का भोग बनता है। गले में कंठस्थान में विशुद्ध चक्र में

आकाशतत्त्व प्रधान है। हमारी दोनों भ्रकुटी के मध्य में जहाँ तिलक किया जाता है, वहाँ आज्ञा चक्र है। अहंकार उसका मुख्य तत्त्व है। सातवाँ सहस्त्रार चक्र मस्तिष्क में तालु के पास है। वह चित्त का स्थान है। योगशास्त्रानुसार मूलाधार के पास कंद नामक स्थान है। उसमें साढ़े तीन चक्कर लगाये सर्पाकार कुंडलिनी शक्ति बिराजमान है। योगाभ्यास और ध्यान द्वारा यह कुंडलिनी जागृत होकर उपर्युक्त सातों चक्र का भेदन कर जब सहस्त्रार में पहुँचती है तब मन का ऊर्ध्वीकरण होने से आत्मानुभूति होती है।

इतनी संक्षिप्त भूमिका के पश्चात अब हम मुख्य प्रश्न पर आते है। सप्त आवरण किस प्रकार भेदे जाते है, यह पहले तात्त्विक दृष्टि से दृष्टिकृत करें। प्रथम आवरण पृथ्वी उसकी तन्मात्रा गंध जीतने से भेदी जाती है। अच्छी-भली गंध में से वृत्ति को लौटा लेना मुश्किल है, परंतु मूलाधार चक्र जिसका जागृत हो जाता है। उससे पृथ्वी का आवरण सहज ही भेदित हो जाता है। जल का सूक्ष्म रूप (तन्मात्रा) रस है। ध्यान द्वारा स्वाधिष्ठान जागृत हो जाता है, तब रसासक्ति सहज ही जीती जाती है। तेज का तन्मात्रा रूप है। जिसका मणिपुर चक्र सक्रिय हो उससे तेज के आवरण का पलभर में उल्लंघन होता है। चौथा आवरण वायु का है। अनाहत चक्र जब खुलता है तब स्पर्श के विषय में से वृत्ति आत्मातत्त्व की ओर मुड़ती है। इसी प्रकार विशुद्ध चक्र का भेदन होने से आकाश का आवरण जीता जाता है। आज्ञा चक्र पर ध्यान करने से उसका भेदन होने से साधक गुणातीत स्थिति को प्राप्त करता है। त्रिगुणात्मक अहंकार का आवरण इस प्रकार

टलता है। सातवाँ एवं अंतिम आवरण महतत्त्व का है . धर्म, भक्ति तथा ध्यान के परिपाक रूप में जब कुंडलिनी जागृत होकर सहस्त्रार में पहुँचती है तब चित्त जीता जाता है। जब चित्त में भगवान के सिवा कोई आकार न रहे, तब महतत्त्व का आवरण गया जाने। माया यानि प्रकृत्ति अर्थात् स्वभाव,जिसने स्वयं का स्वभाव जीता उसने जगत जीता। साधन के द्वारा अष्ट आवरण भेदना तो आकाशकुसुम पाने जितना दुष्कर है।

अनादि महामुक्तराज अबजीबापाश्री ने इसका सरल उपाय बताया है। परमात्मा के परम साधर्म्य पाये हुए अनादिमुक्त की अनुवृत्ति में अगर तन और मन से रहे तो कैसा भी अधम जीव भी माया के आवरण को भेद कर आत्यंतिक कल्याण को प्राप्त करता है।

मुकाम सत्रहवाँ

ध्यान

'ध्यान' शब्द का सामान्य अर्थ होता है चिंतन करना, मनन करना या निहारना। ध्यान कोई ऐसी क्रिया नहीं है जिसे जीवन का थोड़ा समय देकर पूर्ण कर दिया जाये। जागरुकता के साथ जागृत जीवन जीना ही ध्यान है। स्वामी विवेकानंद ध्यान की सर्वमान्य व्याख्या देते हुए 'राजयोग' में लिखते है: 'मन जब किसी आंतरिक या बाह्य स्थान पर चिपकने का अभ्यासु हो जाता है, तब उसमें मानो उस स्थान की ओर एक अखंड प्रवाह रूप से बहने की शक्ति आती है। इस स्थिति को ध्यान कहते है। यह ध्यान अवस्था हमारे अस्तित्व की सर्वोच्च स्थिति है।'

पतंजलि के योगसूत्रों के अनुसार अष्टांग योग में यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार और धारणा के बाद सातवीं भूमिका पर ध्यान आता है। इसका अर्थ यह है कि उपर्युक्त छः भूमिका में मन जब तालीमी हो जाता है तब सहज भाव से सातवीं ध्यान अवस्था में स्थित होता है। ध्यान निंद्रा जितना ही सरल एवं सहज है। दोनों में फर्क केवल इतना ही है कि मन निंद्रा में से कुछ भी पाये बिना ही जागृत अवस्था में आता है। जब कि ध्यान में से कुछ अनुभूति पाकर आता है। मन के पार जाने की पूर्व भूमिका रूप कुछ प्रक्रिया आवश्यक है। जब तक विचार है, संकल्प विकल्प है, देहभाव

है तब तक ध्यान सुलभ नहीं है। इसके बारे में भगवान श्री स्वामिनारायण वचनामृत में कहते है: 'जब अंतःकरण की समक्ष दृष्टा, जो जीवात्मा,देखता रहे और बाहर जो स्थूल शरीर एवं उससे संबंधित जो विषय उन सब को भूल जाता है, अंतःकरण एवं दृष्टा इन दोनों के बीच जो विचार है, उस विचार के द्वारा मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार इन सभी के रूप जानें। पश्चात विचार की दृष्टि से उस अंतःकरण के संकल्प की समक्ष देखते हुए जब संकल्प बंद हो जाए तब भगवान की मूर्ति का ध्यान करें। जब तक विचार संकल्प का जोर हो तब तक संकल्प की ओर देखते रहे, परंतु ध्यान न करें।' (सा.१२)

सामान्यतः हमारी चेतना विचारों के पोशाक पहन कर विहार करती है। प्रत्येक विचार चाहे वह सुख का हो या दुःख का, उसके साथ इतना तादात्म्य करता है कि विचार के गुण के अनुसार तत्काल सुख या दुःख का अनुभव करता है। इस सुख दुःख से परे होने के लिये हमारी चेतना को विचारों की जंजाल से मुक्त करवानी है।इसका एक ही सरल राजमार्ग है, विचारों को तटस्थ भाव से निहारना। विचारों को जागरूकता पूर्वक देखने से हमारी एषणाएँ - तृष्णाएँ -इच्छा पहचानी जाती है। जब हम जागृत होकर विचारों को -वृत्तियों को निहारते है, तब किसी वृत्ति की ताकत नहीं कि वह हमें उसके साथ खिंच ले जाये। हमारी जागरुकता ही दीपमीनार बनकर विचारों के महासागर में से हमारी चेतना को बाहर निकाल कर मनसे पार की प्रशांत अ-मन अवस्था में ले जाती है और वहीं से आरंभ होती है, हमारी ध्यान साधना।

भगवान श्री स्वामिनारायण ने वचनामृत में हमारे मन की वृत्ति ध्यान के द्वारा परमात्मा के स्वरूप में किस प्रकार स्थित होती है, इसका अति सूक्ष्म तत्त्व ज्ञान सम्यक् रूप से समझाया है। भगवान श्री स्वामिनारायण के मतानुसार हमारे नेत्र की वृत्ति अरूप होते हुए भी स्थूल एवं पृथ्वी तत्त्व प्रधान है। परिणाम स्वरूप वृत्ति जब परमेश्वर के स्वरूप में रखी जाती है प्रथम वह वृत्ति पतली डोर की सदृश पीली प्रतीत होती है। मकड़ी जिस प्रकार दो खंभो के बीच अपनी जाल बुनती है, उसी प्रकार वृत्ति अंतःकरण एवं भगवान के स्वरूप के बीच मकड़ी की तरह संलग्न होने से पृथ्वीतत्त्व युक्त वृत्ति परिवर्तित होकर जलतत्त्वमय श्वेत बनती है। ध्यान-साधना आगे बढ़ने से, श्वेत वृत्ति अग्नितत्त्व रूप रक्त होती है, तत्पश्चात वृत्ति जब वायुतत्त्व प्रधान होती है, तब नीली प्रतीत होती है और अंततः आकाशतत्त्व प्रधान होती है तब श्याम प्रतीत होती है। पश्चात पंचतत्त्व की प्रधानता मिट कर वृत्ति निर्गुण होती है, तब अतिशय प्रकाशमान प्रतीत होती है और भगवान के स्वरूप के आकार से हो जाती है। (व.८)

इस प्रकार ध्यान द्वारा वृत्ति निर्गुण होने से जीवसत्ता से भगवान का स्वरूप दृष्टिकृत होता है। पश्चात मन का अस्तित्व ही नहीं रहता है। जिस प्रकार भ्रमर के ध्यान से कीटक भ्रमर बनता है, उसी प्रकार परमात्मा के ध्यान से आत्मा परमात्मा रूप होती है, परंतु वह स्वयं परमात्मा नहीं बन जाती है। इसके अनुसंधान में भगवान श्री स्वामिनारायण ने (अं.३७ में) वचमानृत में स्पष्ट रूप से कहा है: 'भगवान जैसे तो एक भगवान ही है, अन्य कोई नहीं है एवं भगवान

की साधर्म्यता को प्राप्त, भगवान के धाम में जो भगवान के भक्त है, उनका आकार भी भगवान जैसा ही है। तथापि वे पुरुष हैं एवं भगवान पुरुषोत्तम है, वे सर्व में श्रेष्ठ है और उनको उपास्य है तथा सर्व के स्वामी है, उस भगवान की महिमा को कोई ज्ञात नहीं कर सकता है। ऐसे दिव्य मूर्ति भगवान निर्गुण है, ध्येय है तथा उनका जो ध्यान करते है निर्गुण हो जाते है। ऐसा भगवान का स्वरूप है।'

भगवान के किस स्वरूप का ध्यान करें। इसके बारे में स्पष्टता करते हुए भगवान श्री स्वामिनारायण स्वयं के सर्वोपरि उपास्य स्वरूप का ही ध्यान करने की नसीहत देते हुए बताया है: 'पुरुषोत्तम नारायण किसी कारण से पुरुष रूप से होते है तब वह पुरुष.... पुरुषोत्तम के प्रकाश में लीन हो जाते है और पुरषोत्तम ही रहते है। माया रूप से होते है तब माया रूप से होते है तब माया भाव भी पुरुषोत्तम के तेज में लीन हो जाता है, उस रूप से भगवान ही रहते है.... इस प्रकार अनेक प्रकार के कार्य के लिये जिनमें पुरुषोत्तम का प्रवेश होता है उनमें स्वयं के प्रकाश में लीन कर स्वयं ही उस रूप के द्वारा सर्वोत्कर्ष रूप से बिराजमान होकर रहते है और जिसमें स्वयं बिराजमान होते है उसके प्रकाश को ढक कर स्वयं का प्रकाश प्रकट करते है, जिस प्रकार अग्नि लोहे में प्रविष्ठ होता है तब लोहे का शीतल गुण एवं श्याम वर्ण टालकर स्वयं के गुण को प्रकाशित करता है तथा जिस प्रकार सूर्य उदय होता है तब उसके प्रकाश में सभी तारे-चन्द्रमादि तेज में लीन हो जाते है और एक सूर्य का ही प्रकाश रहता है, उसी प्रकार भगवान जिसमें आते है तब उसके तेज का

पराभव कर स्वयं के प्रकाश की अधिकता जताते है, जिस कार्य के लिये स्वयं जिसमें प्रविष्ठ होते है, उस कार्य के होने के पश्चात स्वयं अलग हो जाते है तब वह जैसा होता है वैसा रह जाता है। उसमें जो अधिक दैवत दृष्टिकृत होता था, वह पुरुषोत्तम भगवान का था ऐसा समझें। इस प्रकार सर्व के कारण, सदा दिव्य साकार ऐसे, प्रत्यक्ष पुरुषोत्तम नारायण मिसरी के नरियल की सदृश त्याग भाग न समझें, जैसी मूर्ति देखी हो उसका ही ध्यान-उपासना- भक्ति करें।' (पं.७) श्री हरि की इस वाणी में स्वामिनारायण संप्रदाय का एकेश्वरवाद स्पष्ट रुप से प्रतिघोषित होता है। अनंत कोटि ब्रह्मांड में भगवान तो एक ही है, वे स्वयं के मूल स्वरुप में भगवान श्री स्वामिनारायण नाम से पृथ्वी पर प्रकट हुए। अनंत काल से जगत में जो भी विशिष्ट इश्वरीय कार्य हुए वे सभी उस भगवान द्वारा ही हुए -उनके उस माध्यम में प्रवेश द्वारा ही हुए है। अतएव ध्यान तो परात्पर परब्रह्म पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान श्री स्वामिनारायण का ही करें। एक बार एक हरिभक्त ने परम पूज्य गुरुवर्य श्री नारायणभाई से पूछा: 'गुरुजी, अक्षरधाम में भगवान श्री स्वामिनारायण की दिव्य तेजोमय व्यतिरेक मूर्ति कैसी है? गुरुवर्य ने मंद हँसते हुए कहा था: 'अक्षरधाम की वह दिव्य मूर्ति अति.... अति मनोहर है। उसके जैसी सुंदरता मैंने पृथ्वी पर तो क्या अखिल ब्रह्मांड में भी कहीं नहीं देखी। यहाँ मंदिर में जो घनस्याम महाराज़ की मूर्ति है उसमें और अक्षर धाम की मूर्ति दोनों में महिमा की दृष्टि से अणुमात्र का फर्क नहीं है, परंतु स्वरुप सौंदर्य एवं दर्शन-माधुर्य में दोनों के बीच अतिशय भेद है। उस मूर्ति का

तेज अलौकिक है, न ही सूर्य किरण सदृश है, न ही चांदनी सदृश। पृथ्वी पर एक भी रंग ऐसा नहीं है जिसके साथ उस तेज की तुलना की जाए। उस मूर्ति ने न ही वस्त्र सजें है, न ही आभूषण धारण किये है, तथापि अति रमणीय लगती है। इस लोक में कोई स्वरूप या कोई दृश्य उस मनमोहक मूर्ति जितना रम्य कभी भी प्रतीत नहीं होता है। उस मूर्ति को मैं अभी भी देख सकता हुँ, परंतु उसका सौंदर्य थोड़ा भी शब्दों में कहना संभव नहीं है।'

पश्चात हरिभक्त ने पूछा: 'यह कहा जाता है कि अक्षरधाम में श्रीजीमहाराज़ की मूर्ति में असंख्य अनादिमुक्त रसलीन होकर रहते है, भक्ति की पराकाष्ठा जैसी प्रगाढ तादात्म्य की अवस्था में मुक्त का अलग अस्तित्व रहता है?' गुरुदेव अति प्रसन्नता पूर्वक बोले: 'आपने अतिशय मार्मिक प्रश्न पूछा है। Anadi Muktas have identified themselves with His divine form of the God almighty, that is why they are absolutely absorbed in the divine form of God enjoying His supreme bliss all the time. अनादिमुक्त मूर्ति रूप होकर मूर्ति में रहकर मूर्ति का सुख लेते है, भगवान सुखदाता है और मुक्त सुखभोक्ता है- यही भेद है!'

ध्यान के अनंत प्रकार है, परंतु जिस ध्यान द्वारा आत्मा का आत्यंतिक कल्याण हो वही ध्यान मुमुक्षु को करना चाहिये। इसके बारे में मूर्ति के वास्तविक मर्मी अबजीबापाश्री कहते है: 'देहात्म बुद्धि सहित भगवान श्री स्वामिनारायण मूर्ति की सन्मुख धारणा कर सामान्यतः सभी जो ध्यान करते है, उसे अवरभाव (इस लोक) का ध्यान कहते है। जब सदा

दिव्याकार मूर्तिमान सर्वोपरि भगवान श्री स्वामिनारायण की मूर्ति के तेज के साथ निज आत्मा को एकाकार कर उसमें मूर्ति की धारणा करें उसे परभाव (परमात्मा संबंधी दिव्य भाव) का ध्यान कहते है। यह ध्यान सिद्ध होने से मुमुक्षु परम एकांतिक मुक्त की स्थिति को प्राप्त करता है। श्रीजीमहाराज़ की मूर्ति में रह कर मूर्ति के तदाकार भाव को प्राप्त कर प्रतिलोम रूप से मूर्ति का अखंड ध्यान करना यह परभाव (परमात्मा संबंधी दिव्य भाव) का उत्तमोत्तम ध्यान है।'

मुमुक्षु जब इस प्रकार के ध्यान में संलग्न होता है तब अनेक विघ्न आते है, अतः जब ध्यान करें महान मुक्त अनादि मुक्त को साथ रखें और उनकी सहायता मांगे। ध्यान में सदैव श्रीजीमाराज़ के साथ अनादिमुक्त की धारणा करने से स्नेह अधिक होता है एवं संतपुरुष कृपा कर साधन की समाप्ति कर चैतन्य को मूर्ति रूप कर देते है। अनादि मुक्त की स्थिति दास भाव की चरम सीमा है, मुक्त भाव की पराकाष्ठा एवं प्रेमलक्षणा भक्ति की सर्वोत्कृष्ट स्थिति है!

मुकाम अठारहवाँ
समाधि

गुरु रामानंद स्वामी के अंतर्धान होने के पश्चात उनके चौदहवे के दिन सौराष्ट्र के फणेणी गाँव में भद्रा नदी के तट पर सभा कर भगवान श्री स्वामिनारायण ने शीतलदास नामक एक संन्यासी को समाधि करवा कर स्वामिनारायण संप्रदाय की तवारीख़ के अनुसार समाधि प्रकरण का प्रारंभ किया था। पश्चात समाधि की घटना श्रीजीमहाराज़ के सानिध्य का एक हिस्सा हो गई थी। महाराज़ के दर्शन से, स्पर्श से .... अरे उनकी खड़ाऊ की आवाज़ से भी समाधि होने लगी थी। एक बार श्रीजीमहाराज़ ने लाड़कीबाई भाट नामक एक सत्संगी स्त्री को समाधि करवाई। समाधि में अतिशय तेज को देख कर वे चीखने लगीं। महाराज़ ने उनको समाधि से बाहर लाकर समझाया: 'तुम्हारा स्वरूप तो आत्मा है, देह नहीं है। यह लाड़कीबाई नाम और भाट की देह तुम्हारी नहीं है, अछेद्य, अभेद्य ऐसी आत्मा तुम्हारा स्वरूप है। पश्चात पुनः उसे समाधि करवा कर कहा कि मूलाधार चक्र जो गणपति का स्थानक है वहाँ चार पंखुड़ी का कमल है वहाँ जाकर तुम्हारे स्वरूप को देखो। स्त्री ने आत्मभाव से समाधि में मूलाधार में प्रवेश कर दिव्य प्रकाश देखा और प्रणवनाद सुना। पश्चात स्वाधिष्ठान चक्र जो ब्रह्मा का स्थानक है, वहाँ उससे अधिक प्रकाश देखा और भयानक

नाद सुना। उससे उपर मणिपुर चक्र यानि विष्णु के स्थानक में अतिशय तेज एवं महाभीषण नाद होते हुए देखा। इस प्रकार समाधि में साधक ज्यों-ज्यों उच्च से उच्च भूमिका में जाता है त्यों-त्यों अधिकाधिक तेज के अंबार दृष्टिकृत होता है, उस समय कैसा भी धीरजवान हो, भयभीत हो जाता है, परंतु लाड़की बाई आत्मनिष्ठा एवं भगवद्‌निष्ठा के बल पर इस अनुभव के पश्चात समाधिनिष्ठ बन गई।

इतनी पूर्व भूमिका के पश्चात अब हम यह सोचें कि समाधि वास्तव में क्या है? मन के परिप्रेक्ष्य में इस विषय को समझें। हमारी समक्ष सामान्यतः दो भूमिकाएँ है जिसके भीतर मानव मन कार्य करता है। पहली भूमिका सचेत भूमिका है। जिसमें सभी कार्य 'मैं करता हूँ' ऐसी भावना से जूड़ा रहता है, जैसे जागृत अवस्था। दूसरी भूमिका है अचेत अवस्था जिसमें सभी काम 'मैं करता हूँ' के अहंभाव के बिना होता है। उदाहरण स्वरूप निंद्रा के दौरान शरीर की सभी क्रिया अहंभाव के बिना होती है। इन दोनों भूमिकाओं से एक उच्चतर भूमिका है, जिसमें मन 'मैं करता हूँ' के अहंभाव के बिना सक्रिय रूप से कार्य करता है। इस भूमिका को अतिचेतन अवस्था अथवा समाधि कहते है।

जब मनुष्य गाढ़ निंद्रा में जाता है तब वह सचेत भूमिका से नीचे की अचेत अवस्था में प्रवेश करता है। उस स्थिति में वह साँस लेने के साथ करवट बदलने जैसी शारीरिक क्रिया भी करता है, परंतु यह सब करते वक्त उसे 'मैं करता हूँ' का कर्तृत्व का अभिमान नहीं होता है। जब वह नींद से जागता है तब वह वही का वही व्यक्ति रहता है।

परंतु जब मनुष्य समाधि में जाता है, तो समाधि में जाने से पूर्व अगर वह मूर्ख हो, जड़ हो, अज्ञानी हो, पापी हो, निष्ठुर हो तथापि समाधि में से पूर्ण ज्ञानी, पुण्यवान एवं सहृदयी होकर बाहर आता है।

ऐसा क्यों होता है? इसकी स्पष्टता भगवान स्वामिनारायण ने ग.म. २० वे वचनामृत में की है। जीव जब तक देह में है तब तक वह इंद्रियाँ-अंतःकरण का दृष्टामात्र ही है। वह जब समाधि में जाता है तब इंद्रियाँ-अंतःकरण के दृष्टाभाव का त्याग कर माया से परे जो ब्रह्म उसके सदृश चैतन्यस्वरूप होता है। समाधि में जीव ब्रह्मसंग तुल्यभाव प्राप्त करता होने से उसके ज्ञान की वृद्धि होती है। जिन साधकों की इंद्रियों की शक्ति तप, निवृतिधर्म तथा वैराग्य युक्त होते है, वे समाधि द्वारा नारद-सनकादि तथा शुकजी के जैसी सिद्ध दशा प्राप्त करते है। ऐसे सिद्ध श्वेतद्वीप, बदरीकाश्रम इत्यादि भगवान के धाम में उसी शरीर से आते-जाते है तथा लोक-अलोक सभी स्थान पर उनकी गति होती है। अष्टांगयोग के अनुसार समाधि दो प्रकार की है। (१) संप्रज्ञात समाधि, (२) असंप्रज्ञात समाधि। संप्रज्ञात समाधि में प्रकृति को बस में रखने की समस्त शक्तियाँ आती है, जबकि असंप्रज्ञात समाधि में समस्त मानसिक क्रिया के विराम के निरंतर अभ्यास द्वारा प्राप्त कर सकते है। भगवान श्रीस्वामिनारायण वचनामृत में दो प्रकार की समाधि का उल्लेख करते है। (१) सविकल्प समाधि (२) निर्विकल्प समाधि। जिसे भगवान के स्वरूप में स्थिति हुई हो उसे अशुभ वासना तो नहीं रहती है, परंतु शुभ वासना रहती है कि मैं नारद, सनकादि या शुकजी जैसा होऊँ

... इस प्रकार का जिसे विकल्प रहता हो उसे सविकल्प समाधि वाला कहते है। जिसे इस प्रकार का विकल्प न रहता हो और जो अक्षरधाम की साधर्म्यता को प्राप्त कर केवल भगवान की मूर्ति में ही निमग्न रहता हो उसे निर्विकल्प समाधि वाला कहते है। (ग.प्र.४०)

एक बार वड़ताल में भादरण के एक पाटीदार ने श्रीजीमहाराज़ से प्रश्न पूछा: 'हे महाराज़, यह समाधि कैसे होती है?' श्रीजीमहाराज़ ने इस गहन प्रश्न का अति सरल जवाब दिया था। उन्होंने समझाया था: इस पृथ्वी पर अनेक प्रकार के पत्थर है, चुंबकत्व वाला पत्थर भी उनमें से एक पत्थर है, परंतु उसमें नैसर्गिक लौहचुंहकत्व का गुण विद्यमान है। अतः जब चुंबकत्व वाले पर्वत के पास जब जहाज आता है, तो जहाज की कीलें आकर्षित होकर पर्वत में चिपक जाती है। उसी प्रकार भगवान जब पृथ्वी पर मनुष्य रूप से अवतरित होते है, तब दृष्विगोचर तो अन्य मनुष्य सदृश ही होते है, परंतु उनकी प्रभुता का चुंबकत्व जीव को सहज ही उनकी ओर आकृष्ट करता है। अतः जब कोई जीव श्रद्धा पूर्वक भगवान का दर्शन करता है, तब उसके इंद्रिय-प्राण भगवान के स्वरूप में खिंचे जाने से उनका चित्त समाधि में स्थित हो जाता है।

एक बार समाधि होने के पश्चात ब्रह्म के स्वरूप में से पुनः देह में सहजता से आ नहीं सकते है। मात्र तीन संयोग में ही जीव समाधि में से देह में लौटता है। (१) संसार में सुख की वासना इतनी प्रबल हो कि वह जीव को समाधि में से भी जगाती है। (२) अति समर्थ मुक्त समाधि में स्वतः

आना-जाना करते है। (३) ऐसे समर्थ मुक्त अन्य को भी समाधि करवाते एवं पुनः देह में लाते है। (ग.प्र.७३)

समाधि में भी कामवासना भस्म नहीं होती है। भादरा के रत्ना भक्त समाधिनिष्ठ थे, परंतु उनके अंतःकरण में से काम विकार नहीं टला था। सद्गुरु गोपाळानंद स्वामी ने उनको प्रतिलोमरूप से ध्यान करने की रीति (Technique) सिखाई थी। रत्ना भक्त ने उसके अनुसार स्वयं की आत्मा की अक्षरब्रह्म के साथ एकता कर उसमें बार-वार लोम-प्रतिलोम वृत्ति से श्रीहरि की मूर्ति का ध्यान करने लगे। परिणाम स्वरूप उनके जीव के साथ एकरस रूप भाव को प्राप्त कामवासना जलकर भस्म हो गई। इस समाधि से भी प्रतिलोम ध्यान श्रेष्ठ है! अबजीबापाश्री कहते थे कि समाधि तो सकाम मार्ग है। जो अखंड महाराज़ की मूर्ति को दृष्टिकृत करे वही वास्तविक सिद्ध है एवं ऐसी सिद्ध दशा ही अखंड समाधि है!

श्री स्वामिनारायण डिवाइन मिशन क्यों ?

श्री स्वामिनारायण भगवान के सर्वजीवहितावह संदेश अनुसार मानव जाति के श्रेय एवं प्रेय के लिये-

(क) सेवा - सदाव्रत के आदर्शानुसार बिना भेदभाव के आर्थिक मुसीबत का अनुभव करते भाईबहनों को आवश्यक सहायता पहुँचाना;

(ख) आरोग्य प्रसार की मार्गदर्शक व्यवस्था तथा रोगोपचार के परिचर्या केन्द्र-औषधालय की स्थापना-चलाना, अथवा ऐसा कार्य करती संस्था को सहायता करना;

(ग) आत्मिक शांति तथा मानवता को प्रसारित करते मंदिर, सत्पुरूष के स्मारक केन्द्र आदि का निर्माण-निर्वाह-विकास करना;

(घ) जीवन रचना में उपयोगी साहित्य एवं कला के विकास कार्य को प्रोत्साहित करना;

(च) सम्यक् अभ्यास के लिये पुस्तकालय, संग्रहालय, संशोधन केन्द्र की स्थापना - चलाना अगर ऐसे ईकाई को सहायता देना;

(छ) सर्व समन्वय स्थापित हो ऐसे सांसारिक एवं तत्त्वज्ञानविषयक प्रकाशन प्रसिद्ध करना तथा उनके द्वारा जनसमुदाय का ऊर्ध्वगामी विकास में सहायक होना;

एवं इस प्रकार :

(१) सामाजिक जीवन के आधार तुल्य सदाचार तथा नीति की कक्षा बलवान हो ऐसी प्रवृत्ति का आयोजन करना;

(२) समाज में ऐक्य एकता तथा आपसी सहृद्भाव वृद्धित हो, विश्वबंधुत्व की भावना का विकास हो एवं विसंवादिता दूर हो ऐसे कार्यक्रम देना;

(३) विश्व के धर्म तथा पक्षो के बीच संवादिता का जतन हो इसके लिये सर्वधर्मीय परिषद का आयोजन करते हुए आध्यात्मिक एवं सामाजिक उत्कर्ष को गति देना;

ऐसे सुआयोजित कार्यक्रम तथा प्रवृत्ति द्वारा परिपूर्ण भगवत्स्वरूप की प्राप्ति की ओर मानव समुदाय सर्वांगी विकास का प्राप्ति कर गतिमान हो, ऐसा मिशन का शुभ आशय है।

इस लोक की औषधियाँ से तन का रोग जाता है,
जब कि श्रीजीमहाराज़ की मूर्तिरुप दिव्य ओषधि द्वारा
तन, मन तथा चैतन्य के सभी रोग दूर होते है.

- पूज्यश्री नारायणभाई